THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182978
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 C 55 S Accession No. H 3258

Author चुन्नीलाल

Title सूर का वसन्त वर्णन 1960.

This book should be returned on or before the date last marked below.

ब्रज साहित्य का चतुर्थ पुष्प

सूर का बसन्त वर्णन

(एक वैज्ञानिक विश्लेषण)

लेखक :

चुन्नीलाल 'शेष'

प्रकाशक :

देशबन्धु पुस्तकालय, मथुरा.

ब्रज-प्रदेश अपनी अनेक विशेषताओं के कारण देश के साहित्यिक व सांस्कृतिक जीवन में अपना विशिष्ट स्थान रखता है यह भूमि साहित्य सङ्गीत एवं अन्य ललित कलाओं की श्रोत रही है। यहाँ के मन्दिरों में अपार साहित्य भरा हुआ है एवं यहाँ का लोक जीवन अनेक विशेषताओं से सम्पुष्ट है। हम अब तक अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित "ब्रज की रासलीला" "ब्रज की कला", "ब्रज वसुन्धरा" आदि पुस्तकें प्रकाशित कर चुके हैं। "ब्रज का बसन्त वर्णन" हमारा नवीन प्रकाशन है जो पाठकों के सामने है, इसके लेखक चुन्नीलाल जी 'शेष' ब्रज के प्रतिष्ठित विद्वान है। जो महात्मा सूर एवं अष्टछाप के साहित्य पर प्रामाणिक कृतियाँ हिन्दी जगत् को भेंट कर चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने ब्रज में विभिन्न रूपों में व्याप्त बसन्त का प्रामाणिक एवं रोचक वर्णन किया है। साहित्य-प्रेमियों के लिए यह रचना निश्चय ही उपादेय सिद्ध होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। इस सुन्दर कृति के लिए श्री 'शेष' जी हमारे बधाई के पात्र हैं।

लोक साहित्य प्रेस के संचालक श्री बैजनाथ दानी ने अल्प समय में ही बड़े परिश्रम पूर्वक इस पुस्तक का मुद्रण किया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

डैम्पियर नगर, मथुरा.
१० जनवरी १९६०

शर्मनलाल अग्रवाल
प्रकाशन-मन्त्री
देशबन्धु पुस्तकालय, मथुरा.

प्राक्कथन

जिन लोक-तत्वों का समावेश महाकवि सूरदास ने अपने बसंत-विलास में किया है उनका वर्णन प्राचीन काल से अब तक किसी न किसी रूप में ब्रज में है सूर के कृष्ण अलौकिक रूप से हमारे सामने अवतरित होते हैं किंतु वे ब्रज में अपना अस्तित्व लोक मानस में खोकर जन-जन के हृदय पटल पर छा जाते हैं। यही कारण है कि सूर के काव्य से तत्कालीन समाज का एक जीवित चित्र खींचा जा सकता है। उनके बसंत-विलास में भी यही बात है। यह बात हमने विषय प्रवेश में भली भाँति दिखाने की चेष्टा की है तथा नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूर-सागर को इसका आधार बनाया है किंतु जैसा कि हम जानते हैं सूर का काव्य प्रबन्ध काव्य होते हुए भी मुक्तक है। अतः उसमें अनेक स्थानों पर बसंत-परम्परा की शृंखला नहीं दिखाई देती। यह दोष पद-संग्रह कर्त्ताओं का भी हो सकता है। हमने उनको ब्रज में होने वाले बंसतोत्सवों के अनुसार ही सजाया है तथा,अनुक्रमणिका में दोनों की पद संख्या पृथक-पृथक दे दी है। ना० प्र० वाले सूरसागर में कुछ पद ऐसे भी हैं जिनका या तो बसंत से कोई संबन्ध ही नहीं है अथवा उन पदों में सूर का नाम होते हुए भी सूर के नहीं है। इन सबका उल्लेख कारण बताते हुए हमने परिशिष्ट (१) तथा (२) में दिये हैं। परिशिष्ट (३) में वे पद हैं जो ना० प्र० वाली प्रति में नहीं है किंतु कीर्तन संग्रह में हमें सूरदास के नाम से प्राप्त हुए हैं। परिशिष्ट(४) में वे पद है जिनको हम अलिखित कह सकते हैं। ये मौखिक परम्परा

से लोगों में सूरदास के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे पदों की संख्या बहुत अधिक है किंतु हमने इने-गिने पद ही इसमें दिये हैं। अंत में 'शब्द कोश' देकर पदों को सहज गम्य बनाने की चेष्टा की गई है।

'विषय प्रवेश' में जहाँ हमने वैदिक काल से बसंत और कामदेव की परम्परा ली है वहाँ हमने साहित्यिक क्षेत्र में संस्कृत, अपभ्रंस और अवहट्ट के कवियों का भी बसंत वर्णन दिया है। वह काल की दृष्टि से देखने से यद्यपि पाठकों को शृंखलाबद्ध दिखाई नहीं पड़ेगा, किंतु भाषा की दृष्टि से एक रूपता लाने के लिये ही ऐसा क्रम निर्धारित किया गया है, वैसे तो किसी भाषा की कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती और संस्कृत तो लोक भाषाओं के साथ निरंतर चलती रही है।

अंत में हम पं० प्रभूदयाल जी कीर्तनियाँ, जिनकी परम्परा कीर्तन करती चली आ रही है, को हम धन्यवाद देते हैं। उनके कीर्तन संग्रह से हमें कई पद मिले तथा श्री लाड़लीलाल जी के मंदिर(बरसाने)के गुंसाई श्रीयुगलकिशोरजी भी धन्यवाद के पात्र हैं जिनकी मंदिर की 'वाणी जी' (पुस्तक) से हमें एक नवीन पद (संख्या ६२) प्राप्त हुआ। मैनपुरी निवासी श्री नवल किशोरजी जिन्होंने मौखिक परम्परा के पद लिखवाने की कृपा की हम उनके भी आभारी हैं।

मथुरा — चुन्नीलाल 'शेष'

बसंत पंचमी सं० २०१६ वि०

सहायक ग्रंथ अनुक्रमणिका

(अंक पृष्ठ संख्या के द्योतक हैं)

ऋग्वेद १३, १४
यजुर्वेद १३
अथर्ववेद १३
कालिका पुराण ११, १४
गरुण पुराण २०, ३५
पद्म पुराण ३४
ब्रह्मवैवर्त्त पुराण २५
भविष्य पुराण २१
भविष्योत्तर २१
भागवत पुराण १५
मत्स्य पुराण २०
वृहद् नारदीय पुराण ७२
हरिवंश पुराण १४
रामायण (बाल्मीक कृत) ३७
वात्सायन काम सूत्र २२, २४, ३६
सरस्वती कंठाभरण २४
चारुदत्त नाटक (भास) २२
सौंदरानंद ,, २२
बुद्ध चरित्र १७ (अश्वघोष)
दशकुमार चरित्र (दंडी) २२

मालविकाग्निमित्र (कालिदास) २४, २५, ३६
रत्नावलि नाटिका ,, २४
कुमारसंभव ,, ३९
रघुवंश ,, ३६
ऋतु-संहार ,, ४२
अभिज्ञानशाकुंतल ,, ४२
रामायण (स्वयंभू) ४६
संदेश रासक (अब्दुल रहमान) ४६
सिरी थूली भद्द फागु (जिन पद्म सूरी) ५२
गीत गोविंद (जयदेव) ४५
विद्यापति पदावली १,५५
पृथ्वीराज रासो (चंद वरदाई) ५३
पदमावत (मालिक मोहमद जायसी) ५६
हित चतुरासी (श्री हित हरिवंश) ५६
व्यास वाणी संग्रह (श्री हरिराम व्यास) ६०
केलिमाल (स्वामी श्री हरिदास) ६०
गीतावली (गोस्वामी श्री तुलसीदास) ६१
सूरसागर (ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित)
कीर्तन-संग्रह (प्रकाशक-लल्लूभाई छगनलाल, अहमदाबाद,)

इसके अतिरिक्त और भी अनेक-अनेक पुस्तकों के संदर्भ कवियों की रचनाएँ, हस्त लिखित ग्रंथों से प्राप्त पद तथा मौखिक रूप से प्राप्त पद यत्र-तत्र इस पुस्तक में दिये गये हैं जो अध्ययन करने से पाठकों को प्राप्त होगीं।

———

विषय-सूची

(अंक पृष्ठ संख्या के द्योतक हैं)

विषय प्रवेश—

ज्योतिष के अनुसार बसंत आगमन ८। कालिका पुराण में बसंत जन्म कथा ११। कामदेव १२। ऋक्, यजु और अथर्व वेद में कामदेव का उल्लेख १३। हरिवंश पुराण में कामदेव का वर्णन १४। मथुरा संग्रहालय का टैराकोटा १५। स्मर दीपिका के अनुसार काम का स्थान १७। यूनान और रोम में कामदेव सम्बन्धी मान्यता १७। उसकी भारतीय श्री से तुलना १८।

प्राचीन भारत में मदनोत्सव—

मत्स्य, गरुण, भविष्योत्तर और भविष्य पुराण में मदनोत्सव २०, २१। वात्सायन काम-सूत्र, काव्य-मीमांसा, चारुदत्त नाटक, दशकुमार चरित्र, वर्ष-क्रिया कोमुदी, रत्नावली में बसंत के विविध रूपों का उल्लेख २२, २३। बसंत के अन्य उत्सव २४, २५।

ब्रज के बसंतोत्सव—

बसंत पंचमी २६, नंदगाँव-बरसाने की लठामार होली २९, आन्योर और जतीपुरा की होली ३१, जाव बठैन की होली ३२, फालेन की होली ३२, दाऊजी का हुरंगा ३२, मन्दिरों की होली ३३। चौपई ३४, फूलडोल ३५, बन यात्रा ३६, और समाज ३८,

बसंत काव्य परम्परा—

संस्कृत–कालीदास का बसंत वर्णन ३९, गीत गोविंद ४५

अपभ्रंश—

स्वयंभू कृत रामायण ४८, संदेश रासक ४९।

अवहट्ट—

सरी थूली भद्द फागु ५२।

हिन्दी—

पृथ्वीराज रासो ५३, बीसलदेव रासो ५३, विद्यापति ५५ पद्मावत ५६, हित चतुरासी ५६, गीतावली (तुलसी) ६१।

सूर का बसंत वर्णन—

रचनात्मक विकास ६४, भावात्मक विकास ६६, सूरदास का गोकुल कहाँ ७१, सूर पर विद्यापति का प्रभाव ७४. बसंत का सूर संगीत ७८, बसंत राग का रूप ८०, बसंत राग का मानवी करण ८१, राग सूची ८२, धमार ८२, सूर में तानों का पूर्व रूप ८५, नृत्य ८६, वाद्य-यंत्र ८९।

बसंत लीला—

नित्य बसंत ९१।

होलिकोत्सव (पद साहित्य)—

फागु आरम्भ ९७, गोपियों का यशोदा से कृष्ण माँगना ९७, सखी द्वारा कृष्णागमन ९८। राधा का आनन्दित होना, खेल वर्णन ९८। कृष्ण होली खेलने बरसाने आये ९८,कृष्ण का राधा ग्रहागमन ९९। राधाकृष्ण की गुलालमयी होली १००। बरसाने की रंग रंगीली होली १००। बरसाने की होली १०१। लठामार होली १०३। ब्रज की खोरी में होली १०४। खोरि साँकरी को की लीला १०६। लठामार होली १११। नन्दगाँव की होली ११५, गोकुल (नंदगांव) की रंग रंगीली होली ११६। ब्रज बीथिन की होली १२४। सखी का बचन सखी से कि वह कृष्ण रूप पर मुग्ध होगई है १२५। गोपी कृष्ण को युवती बना कर महर के

गास ले गईं १२८। बलदाऊ पकड़े गये। कृष्ण को स्त्री बनाया गया १२९।

चौपई वर्णन--

ब्रज की खोरि में १३०। ब्रज में १३१। गोकुल की होरी १३२। ब्रज बीथिन में होरी का वर्णन १३३। गोपियों ने बलराम का रूप धारण कर कृष्ण को पकड़ लिया १३३। पनघट पर होली-छेड़छाड़ १३४। गोपियों द्वारा विनती १३५। कृष्ण पकड़ कर राधा के लाये गये १३७। होली में छद्म वर्णन १३७। राधा कृष्ण और कृष्ण राधा बन कर गये १४०। होली में गेंदुक चलाने का वर्णन, यमुना तीर १४१। वृन्दावन की होली १४३। होलिका-विलास १४४, बृन्दावन की होली १४४।

फूलडोल—१४७।

कृष्ण मथुरा गमन समय गोपियों की उक्ति १५०।

बन बिहार १५७।

परिशिष्ट १—

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित परिशिष्ट से लिये गये पद १६०।

परिशिष्ट २—

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा बसंत-बिलास के पद जो या तो सूर की रचना नहीं अथवा विषय से संबंधित नहीं है १६५।

परिशिष्ट ३—

कीर्तन-संग्रह से संग्रहीत पद १६६।

परिशिष्ट ४—

सूर का होली पर अलिखित पद साहित्य संकलन है १८२।

शब्दकोष—१ से ३२ तक

पद-सूची (संख्या क्रमानुसार)

(जिन पदों पर ना० प्र० की पद संख्या नहीं दी है वे लेखक द्वारा संग्रहीत हैं)

ना० प्र०

३४६१ १. नित्य धाम वृन्दाबन स्याम ।
३४६२ २. राधे जु आजु बरनौ बसंत ।
३४६३ ३. ऐसौ पत्र पठायो नृप बसंत ।
३४७३ ४. कुसमित बन देखन चलहु आजु ।
३४६६ ५. कोकिल बोली बन बन फूले, मधुप गुँजारन लागे ।
३४६४ ६. बेगि चलहु, प्रिय चतुर सयानी ।
३४६५ ७. देखो बृंदाबन कमल नैन ।
३४६८ ८. पिय देखौ बन-छबि निहारि ।
३४६७ ९. बृंदाबन खेलहिं स्री गोपाल ।
३४६९ १०. आयो आयो पिय रितु बसंत ।
३४७० ११. आयौ जान्यौ हरि बसंत ।
३४७१ १२. देखत बन ब्रजनाथ आजु, अति उपजत है अनुराग ।
३४७२ १३. सुन्दर बर सँग ललना बिरहति, बसंत सरस...
३४८२ १४. (आलीरी) नँद-नँदन वृषभानु-कुँवरि सौ बाढ्यौ
३४७७ १५. तेरे आवेंगे आजु सखी, हरि खेलन फागरी ।
१६. हौं तो आज नँदलाल सौं, खेलोंगी होरी ।
३४८४ १७. निकसि कुँवर खेलन चले, रँग होरी ।
१८. नागर रसिक अरु रसिक नागरी ।
३४७६ १९. खेलत नवल किसोर-किसोरी ।
३४७८ २०. हरि-सँग खेलत हैं सब फाग ।
३४९० २१. कर लिये डफहिं बजावै,हो हो हो सबाक खेलार...

३५०७ २२. सुनतहिं बृषभानु सुता जुवति सब बुलाईं।
३५११ २३. खेलत फागु कुँवर गिरधारी।
३५१३ २४. मोहन के खेलत में रस रह्यौ, स्यामा परी...
पृ०१३२ २५. हो हो होरी खेले रँग सौं, बृजराज कुँवर...
३५२८ २६. स्याम-स्याम खेलत दोउ होरी।
३५१६ २७. राधा मोहन रँग हैं. खेल मच्यौ ब्रज खोरि।
२८. तुम चलौ सबै मिलि जाँय खेलें होरियां।
३५२५ २९. स्याम सांग खेलन चली स्यामा, सब सखियन...
३५२६ ३०. खेलत फागु कहत हो होरी।
३५२७ ३१. बनी रूप रंग राधा, तातैं अधिक बने ब्रजनाथ हो.
३५२३ ३२. बल्लभ राजकुमार छबीले हो ललना।
३५२१ ३३. रितु बसंत के आगमहिं मिलि झूमक हो।
३५२४ ३४. (मनमोहन ललना मन हर्‌यौ हों।)
३५. फागु खेलत ब्रज-सुंदरि, नन्दराइ ग्रह आई।
३४८२ ३६. गोकुल सकल ग्वालिनी (हो) घर घर खेलैं फाग।
३४८५ ३७. या गोकुल के चौहरैं रँग भीजी ग्वालिनि।
३४८८ ३८. ऊँचौ सो गोकुल नगर जँह खेलत होरी।
३४८६ ३९. हो हो हो हो हो हो होरी।
३५१९ ४०. ग्वालिनी जोबन गर्व-गेहली।
प०१२९ ४१. नन्द-सुवन ब्रज-भावते, सँग फागु मिलि खेलौ जू।
३४९२ ४२. ठाड़ो हो ब्रज-खोरी ढोठा कौन कौ।
३५०२ ४३. (अरी माई) मेरो मन हरि लियो नंद दुटौना।
३५०३ ४४. माई मोहन मूरत साँवरो, नँद-नँदन जेहि नाँवरो।
३५०४ ४५. (अरी माई) साँवरो सलोनो अति नन्द कौ...
३५०४ ४६. नँद के नँदन आली मोहि कीनी बावरी।
३१९८ ४७. छैल छबीले मोहना (री) जाके घूँघर बारे केस।
३४९५ ४८. मोहन गए,आजु तुम जाहु दाँव हम लेहिंगी हो।

३५१७ ४९. ग्वाल हँसे मुख हेरि कै, अति बने कन्हाई ।
३५८८ ५०. ब्रजराज लड़ैतौ गाइयै, (मन) मोहन जाकौं नाऊँ
३४८७ ५१. ब्रज की बीथिन-बीथिनि डोलत ।
३५०९ ५२. हो हो हो हो होरी करत ब्रज खोरी ।
३५२० ५३. गारी होरी देत दिबावत ।
३४९२ ५४. हरि साँग खेलन फागु चली ।
३४८९ ५५. होरी खेलत ब्रज खोरिन में ब्रजवाला बनि-बनि...
३४९४ ५६. खेलत स्याम ग्वालिनि साँग ।
३४९६ ५७. चकित भई हरि की चतुराई ।
३५२४ ५८. हो हो हो हो लै लै बोलैं ।
३५०१ ५९. लालन प्रगट भए गुन, आजु त्रिभंगी लालन ऐसे हौ
३४९९ ६०. घर घर ते सुन गोपी हरि-सुख देखन आईं ।
३५०० ६१. हम तुमसौं बिनती करैं, जनि आँखिन भरौ गुलाल
नवीन पद ६२. मेरी अखियाँ मोहन जनि भरौ ।
३५०६ ६३. खेलन हरि ग्वाल संग फागु रंग भारी ।
३४९७ ६४. (ब्रज जुबति मिलि) नागरि, राधा पै मोहन लै आई
३५२० ६५. खेलत मोहन फाग भरे रंग ।
प०१२७ ६६. स्यामा स्याम सौं आजु, बृंदाबन खेलत –
३४७४ ६७. पिय प्यारी खेलैं जमुना तीर ।
३५३४ ६८. होरी खेलत जमुना के तट, कुंजन तट बनवारी ।
३४७५ ६९. बाल गोपाल लाल सौं खेलैं, मुख मूँदैं मन खोलै
३५१५ ७०. सौंधे की उठत झकोर मोहन रँग भरे ।
३५१२ ७१. नँद-नँदन बृषभानु-किसोरी, मोहन राधा खेलत...
७२. बृंदाबन परम सुहावनो राधा खेलैं फाग, बारे...
प०१३० ७३. बृंदाबन में स्याम बाम सँग, मधुरी बेन बजावैं ।
३५३५ ७४. माई फूले फूले फूलत, राधा कृष्ण हैं झूलत...
३४३७ ७५. गोकुलनाथ बिराजत डोल ।
३५३९ ७६. झूलत नँद-नँदन डोल ।
३५३८ ७७. डोल देखि ब्रजबासी फूलैं ।

३५३२ ७८. कुछ दिन ब्रज औरौ रहौ हरि होरी है।
३५३३ ७९. कछु इक दिन औरौ रहौ, अब जिनि मथुरा जाहु।
३४८० ८०. मानौं ब्रज तैं करिनि चली मदमाती हो।
३४८० ८१. जमुना के तट खेलति हरि सँग, राधा लिए...
३०७४ ८२. फूलनि के महल फूलनि की सेज, फूले कुंज...

परिशिष्ट १

प० १२१ ८३. (श्री मदन मोहन जू) मति डारौ केसरि पिचकारी
प० १२३ ८४. बृंदाबन खेलत हरि होरी।
प० १२४ ८५. होरी के खिलार भावति यौं ही जान न देहौं।
प० १२५ ८६. ऐसी का खेलौ तोसौं होरी।
प० १२६ ८७. ब्रज मैं हरि होरी मचाई।
प० १२८ ८८. भली भई होरी जो आई घर आये घनस्याम।
प० १३१ ८९. (प्यारी नँदनँद वृषभानु कुँवरि सौं, खेलत...
प० १३२ ९०. हो हो होरी खेलैं रँग सौं, ब्रजराज कुँवर..
प० १३३ ९१. आजु हौं होरी हरिहिं खिलाऊँ।
प० १३४ ९२. रबि तनया के सलिल गँभीर, आवहुरे मिलि...

परिशिष्ट २

३५३२ ९३. डफ बाजन लागे हेली।
३५३१ ९४. जमुना तैं हौं बहुत रिझायौ।
३५२९ ९५. करत जदुनाथ जलधि-जल केलि।
३५३० ९६. जदुपति जल क्रीड़त जुवतिन सँग।
३४९३ ९७. साँवरौ ढोटा को है माई बारिज नैन विसाल।
प० १२२ ९८. ठाड़ी देखी नँद दुवारैं हौं, सुंदरि इक दह्यौ..

परिशिष्ट ३

९९. खेलत गुपाल नव सखिन संग।
१००. खेलत बसंत बलभद्र देव।
१०१. देखौ बृन्दाबन जस बितान।
१०२. आईं हम नँद के द्वारैं।

१०३. बंदौ पद पकंज नँदलाल ।
१०४. खेलत बसंत स्री नँदलाल ।
१०५. तुम बेगी स्याम भलैं आए हो, होरी खेलन रँग...
१०६. रहसि घर समधिन आई ।
१०७. नैंकु मोहड़ो माँड़न देउ होरी के खिलैया ।
१०८. अपने पिय संग खेलो मिलि होरी, पिचकारिन...
१०९. औरन सौं खेले धमार लाला,मोसौं मुखहु न बोलै
११०. सलौंनी स्यामा मन हर्यो हो, रस बस कीन्हे नँद...
१११. खेलत जाके रँग रह्यौ हो, ब्रजबासिन सँग फागु ।
११२. होरी खेलैं स्याम नवल बाम, बृषभानु धाम...
११३. निर्त्त दोउ गति लिये हो ललना बृषभानु नंदनी...
११४. आज हरि ब्रज जुबतिन पकरे ।
११५. मोहन मुनि ह्वै आए हो ।
११६. माई होरी खेले मोहना, लिए गुलाल अबीर ।
११७. तारी दै गारी गावहीं ।
११८. खेलत हैं हरि हो हो होरी ।

परिशिष्ट ४

११९. मेरे आयो रे स्याम नटबर बनकैं ।
१२०. बृन्दाबन स्याम मची होरी ।
१२१. डफ बाज्यौ रे छैल मतवारे को ।
१२२. जमुना तट आजु मची होरी ।
१२३. आईं रे स्याम होरी खेलन आईं ।
१२४. जो ब्रज कुंजन जाँय पकड़ लाई नँद के लाला ।
१२५. कर लिएँ अबीर गुलाल साँवरौ खेलत होरी ।

—:o:—

विषय-प्रवेश

ज्योतिष शास्त्र के मतानुसार सौर अयन को बारह भागों में विभक्त करने से बारह राशियों का निर्माण किया गया। इनमें से प्रत्येक एक-एक सौर मास की प्रतीक मानी जाती है। इन बारह राशियों के नाम क्रमशः मेष, वृषक, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन है। इनमें से सूर्य जब कुंभ और मीन राशि पर आता है, तब पृथ्वी पर बसत का प्रादुर्भाव होता है। किसी-किसी के मत से बसत का आरंभ सूर्य के मकर राशि पर ही हो जाता है। प्रचलित मासों की नामावलि के अनुसार चैत्र और वैशाख बसंत मास कहलाते हैं। बसंत का आरंभ सूर्य के उत्तरायण आने पर ही होने लगता है। २३ दिसम्बर को दिन और रात बराबर होते हैं। अतः इसके पश्चात् ही सूर्य उत्तरायण आने लगता है और भारतीय मतानुसार बसंत-पंचमी को जो माघ शुक्ला ५ को पड़ती है बसंत का जन्म दिवस मान लिया जाता है। विद्यापति ने बसंत-पंचमी को बालक बसंत का जन्म दिन मान कर बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

माघ मास सिरि पंचमी गजाइलि नवम मास पंचम हर आई।
अति घन पीड़ा, दुख बड़ पाओल वनस्पति भेलि धाइ हे।
सुभ खन वेरा सुकुल पक्ख है दिनकर उदित समाई।
सोरह सम्पून बतिस लखन सह जनम लेत रितुराई हे।

देव ने बालक बसन्त का वर्णन इस प्रकार किया है—

डार द्रुम पालना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झंगूली ते तो तन सुखकारी दै ।
पवन झुलावै केकी कीर हुलसावै 'देव'
कोकिला कलावत गावैं कर तारी दै ।।
उड़त पराग सो उतारो करै राई नौंन,
कुंद कली नायिका लतान सिर सारी दै ।
मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि,
प्रात ही खिलावत गुलाब चटुकारी दै ।।

बसंत ऋतु में सभी ऋतुओं का आभास मिलता है, इसी से इसको 'ऋतुराज' कहा गया है। पुष्पों का बाहुल्य होने के कारण इसे 'पुष्प समय'[1] तथा 'पुष्प मास' भी कहते है। चारों ओर सुगंधि फैलाने से 'सुरभि', श्री युक्त होने से कान्त, कोयल को आनन्द देने से पिकानंद और प्रजनन से सबधित होने से काम-सख कहलाता है।

यथार्थ में बसंत का सबंध प्रजनन से ही है। सूर्य के उत्तरायण को आने से पृथ्वी उससे ऊष्मा ग्रहण कर नये-नये पल्लव, फल, फूल एवं कलियों से वनभूमि को वासंती बना देती है। छोटी-छोटी मधु मक्खियाँ जहां पुष्पों से मधुर मधु सग्रह करती हैं वहां वे पुष्पों के पराग को अपने पैरों में लपेट कर मादा पुष्पों के रज से संपर्क कराती हैं और वे उन्हें ग्रहण कर फल दाता बन जाती हैं। शिव-पार्वती के विवाह की कथा इसी प्रकार के दो पुष्पों की कहानी है। शिव और पार्वती दो पृथक्-पृथक् पुष्प हैं। दोनों पास भी हैं किंतु उनका समागम नहीं होता, तो कामदेव बसंत की सहायता से उस कार्य को पूर्ण करता है। इस कथा का अंत किस प्रकार

१. पुष्प समय का अर्थ रजस्वला भी हो सकता है।

हुआ; शङ्कर और पार्वती के संयोग से फल रूप स्वामी कार्तिकेय की उत्पति हुई। यही तो इस विधना के विधान का फल है जो संपूर्ण जगत को चला रहा है।

कालिका पुराण (अध्याय ४) में बसंत जन्म की कथा इस प्रकार दी है—

जब देवताओं को दैत्यों से युद्ध करने के लिये एक सुयोग्य सेनापति की आवश्यकता हुई तो उन्हें ज्ञात हुआ कि शकर-पुत्र ही इस दैत्य (तारकासुर) का संहार कर सकता है। उस समय शंकर समाधि में थे। उनकी समाधि नष्ट करने की भला किसमें शक्ति थी। उसके लिये कोई भी तैयार नहीं हुआ, तो विधाता ने कदर्प को बुलाकर उसे शंकर-समाधि भंग करने की आज्ञा दी। काम ने विधाता से प्रार्थना की कि उसका कार्य साधारण कामिनी से नहीं चलेगा। अतएव वे एक अद्भुत कामिनी को उत्पन्न करें, तभी उनका कार्य पूर्ण हो सकेगा।

कंदर्प की बातें सुनकर विधाता इस चिंता से व्याकुल हो गये कि शिव को किस प्रकार सम्मोहित किया जाय। चिंता करते-करते उन्होंने एक लंबी सांस छोड़ी।

उसी निश्वास से पुष्पों से अलंकृत बसंत की उत्पत्ति हुई। चूताकुंर, चूत लतिका, भ्रमर समुदाय एवं किंसुक प्रभृति पुष्प बसंत के हाथ में विद्यमान थे। उस समय बसंत एक प्रफुल्लित पादप की भांति शोभायमान थे। उनकी आकृति रक्त कमल जैसी, नेत्र विकसित कंज से, मुख मंडल संध्योदित पूर्ण शशांक की भांति उज्ज्वल, नासिका सुंदर, कर्ण विवर, कंठ शंख सदृश, केश कलाप कुंचित एवं श्याम वर्ण, कर्ण

कुंडल अस्तनोमुख सूर्य की भांति प्रकाशवान एवं वक्षस्थल विस्तीर्ण था। उसकी गति मस्त हाथी जैसी, दोनों भुजदंड पीन, स्थूल तथा आयतकार, कर द्वय कठिन स्पर्श, कटि एवं जंघा सुवृत, स्कंध उन्नत तथा हृदय देश सब लक्षणों से परिपूर्ण था।

इस प्रकार प्राकृतिक बसंत मानवी रूप में हमारे सामने आजाता है जहां वह कामदेव की सहायता को उत्पन्न हुआ है। इसी से इसका नाम कंदर्प-सखा पड़ा है। इस प्रकृति परक बसंत का जब मानवीकरण हुआ तो इस बात की आवश्यकता भी हमारे सामने आती है कि काम का वास्तविक रूप क्या है ?

कामदेव[1]

१. कामदेव के पर्याय वाची शब्द—कन्दर्प, मदन, मन्मथ, मार, प्रद्युम्न, मीनकेतन, दर्पक, अनंग पंचसर, स्मर, शम्बरारि, मनसिज, कुसुमेषु, अनन्यज, पुष्प धन्वा, रति पति, मकरध्वज, आत्मभू, ब्रह्मन्, विश्व केतु। शास्त्रकार कामदेव के पचास भेद मानते हैं—

१. काम, २. कामद, ३. कान्त, ४. कान्तिमान्, ५. कामग, ६. कामचर, ७. कामी, ८. कामुक. ९. कामवर्धन, १०. राम, ११. रम, १२. रमण, १३. रतिनाथ, १४. रतिप्रिय, १५. रात्रिनाथ, १६. रमाकान्त, १७. रममाण, १८. निशाचर, १९. नन्दक, २०. नन्दन, २१. नन्दी, २२. नन्दियता, २३. पंचबाण, २४. रतिसख, २५. पुष्प धन्वा २६. महाधनु, २७. भ्रामक, २८. भ्रमण, २९. भ्रममरण, ३०. भ्रम, ३१. भ्रान्त, ३२. भ्रामक, ३३. भृंग, ३४. भ्रान्तचार. ३५. भ्रमावह, ३६. मोहन, ३७. मोहक, ३८. मोह, ३९. मोहवर्धन, ४०. मदन ४१. मन्मथ, ४२. मातंग, ४३. भृंगनायक, ४४. गायन, ४५. गीतिज ४६. नर्तक, ४७. खेलक, ४८. उन्मतोन्मतम, ४९. विलास, ५०. लोभ वर्धन।

काम का उल्लेख सबसे प्रथम ऋग्वेद (१०, १२९, ४) में है, जहां उसका अर्थ सायण भाष्य में 'सृष्टि की इच्छा' करते हुए लिखा है कि सर्व प्रथम परमात्मा के मन से काम उत्पन्न हुआ। उससे सर्व प्रथम बीज (उत्पत्ति कारण) निकला।

यजुर्वेद (७, ४८) में कहा गया है कि कौन देता है तथा किसके लिये देता है ? इस प्रश्न का उत्तर होगा कि काम के लिये ही देता है तथा प्रतिग्रहीता भी काम ही है।

इन मंत्रो से भी यह बात सिद्ध होती है कि काम का संबंध प्रजनन से है। वह परमात्मा का मानस पुत्र है तथा वही दाता और प्रतिग्रहिता है।

किंतु अथर्ववेद (३, २५, १-३) में जो कामदेव का वर्णन मिलता है उससे उसके मानवीकरण पर भी प्रकाश पड़ता है तथा वह इस बात की ओर स्पष्ट संकेत करता है कि इसमें पुराणों में मिलने वाले कथा भाग के विन्दु छिपे हुए हैं। इसीमें (वही २) एक मंत्र है—

आधीपर्णां कामशल्यामिषुं सङ्कल्प कुल्भलाम्।
तां सुसन्नतां कृत्वा कामा विध्यतु त्वा हृदि ॥

इसका आशय यह है कि (हे मेरे प्रियतम, या प्रियतमे) उस वाण को व्यथा रूप पंखों से सजाकर, तथा नाना संकल्प-विकल्पों से चिपका कर और उसको खूब झुकाकर कामदेव तेरे हृदय का भेदन करें।

इसमें यद्यपि कामदेव को पुष्पधन्वा नहीं कहा गया तथापि पंख लगे वाणों का रूपक उसके धनुषधारी होने तथा प्रेमीजनों के हृदय में प्रहार करने का स्पष्ट उल्लेख है।

कालिका पुराण (प्रथम अध्याय) में लिखा है—

जब ब्रह्मा से दक्ष प्रभृति मानस पुत्रों की सृष्टि हुई, तो उसी के साथ सध्या नाम की कन्या भी उत्पन्न हुई। इसे देख कर ब्रह्मा को यह चिंता हुई कि यह जगत का कौनसा कार्य करेगी। उससे उसी समय परम रमणीय मूर्ति 'कामदेव' का जन्म हुआ। नर-नारी को मुग्ध करने के लिये पुष्प-धनु और पुष्प-सर प्रदान किया गया। कामदेव ने परीक्षा करने के लिये ब्रह्मा,दक्षादि, ऋषि और संध्यादि पर अपना बाण प्रहार किया, जिससे वे सभी काम पीड़ित हो गये। ब्रह्मा संध्या पर आसक्त हो गये। इसी समय महादेव वहाँ आगये और सध्या के प्रति उनकी आसक्ति देखकर ब्रह्मा का उपहास करने लगे। इससे ब्रह्मा अत्यंत लज्जित हुए। उन्होंने अपने काम वेग को रोका और उसे हर कोपानल से जलने का शाप दिया। इससे दुखी होकर उन्होंने ब्रह्मा से प्रार्थना की। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि मेरा शाप तो नष्ट नहीं हो सकता किंतु वह फिर से जीवित हो जायगा। इसके पश्चात् दक्ष की देहजात कन्या रति से उसका विवाह कर दिया।

संध्या ने दुखी होकर तप किया तथा भगवान के प्रसन्न होने पर उनसे यह वर माँगा कि प्राणी उत्पन्न होते ही सकाम न हों। भगवान ने उसकी प्रार्थना पर मनुष्य जीवन को शैशव, कौमार, यौवन और जरा चार भागों में विभक्त कर दिया तथा यौवनावस्था में ही कामोत्पत्ति का निर्देश किया। (वही १९ वाँ अध्याय)

हरिवंश पुराण (१६२ अध्याय) में कामदेव के मूल जन्म की कथा तो नहीं है किंतु उसका प्रारंभ उस समय से होता है जब शिवजी के शाप से भस्म होकर रति की प्रार्थना

पर उसे पुनर्जन्म का वरदान प्राप्त होता है। इसमें लिखा है कि रुक्मणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। जन्म के सांतवे दिन शम्बरासुर ने हरण कर अपनी पत्नी मायामती को दे दिया, जो पूर्वजन्म की रति थी। मायामती के कोई शिशु न था। वह उसे पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। बालक के लक्षणों से उसने समझ लिया कि यह बालक उसका पति कामदेव है। देवताओं ने भी उसे यही बताया। इसमें वह बालक का पुत्र सदृश पालन पोषण न कर सकी और उसे धाय को सौंप दिया। फिर रसायनादि के प्रयोग से उसे सत्वर वर्द्धित कर मायामती उससे मिलगई। प्रद्युम्न भी वैष्णव अस्त्र से शंबरासुर को मारकर पत्नी के साथ पितृगृह लौट आये। कहने को शबरासुर की पत्नी होते हुए भी वस्तुतः मायामती उसकी पत्नी नहीं थी। कंदर्प की पत्नी रति पुनर्वार पति प्राप्ति की कामना से देवगण के आदेशानुसार मायाबल से शंबरासुर की पत्नी बनकर रहती थी।

इसी पुराण (१ म. २६-२८) में कामदेव को धर्म का पुत्र माना गया है। श्री मद्भागवत (६, ६, १०) में ब्रह्मा की कन्या संकल्पा के पुत्र संकल्प हैं। संकल्प से ही काम की उत्पत्ति हुई है।

इस प्रकार ऋग्वेद और पौराणिक कथाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि काम की उत्पत्ति मन से है। वह मन से उत्पन्न होकर फिर मन पर ही प्रहार करता है।

इसी से ब्रजभाषा के एक कवि ने इसे पिता का नाश करने वाला कहा है।[1]

इस पुष्पधन्वा का रूप निरूपण विष्णु धर्मोत्तर में यों किया गया है कि कामदेव शंख, पद्म, धनुष और बाण धारण करते हैं। इनके पाँच बाण हैं,[2] मदके कारण चक्षु ईषत् कुंचित है। केतु मकर है तथा रति, प्रीति, शक्ति और उज्ज्वला चार स्त्रियाँ हैं।

मथुरा संग्रहालय में एक सुंदर टेराकोटा (मृण-मूर्ति) सुरक्षित है जिसका काल ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है। जो एक पुष्पित क्यारी में एक मनुष्य की छाती पर खड़ा हुआ है। जिसके सीधे हाथ में बाण तथा बाँए में ईख का धनुष है। डा० जोनसन ने अपने एक पत्र में (ओक्सफोर्ड

---

१. करत निकाम काम स्याम मुख जाको करै,
विधि सब अंग स्याम कोयल बनाई तू।
पाहन जनम औ भुजंग अंग संग सदाँ,
चंदन अबीर पीर जानै का पराई तू।
'ग्वाल कवि' काम हे मनोज मनमथ बौरे,
पितु को नसैया क्यों न होय दुखदाई तू।
संभु सिर पाय, सिधु-नद कहवाय,
द्विजराज पद पाय, हाय होत क्यों कसाई तू'

२. कामदेव के पाँच बाणों के नाम किसी ने अरविंद, अशोक, आम्र मंजरी और उत्पल माना है। दूसरे चंपक, आम्र मजरी, नाग केसर, केतक और वेला मानते हैं। गीत गोविंद मठर जयदेव बधूक, मधूक, नील कमल, तिल और कुंद कहते हैं। भरत के मत से हर्षन, प्रहसन, मोहन, मूर्छन और विकर्षण है।

८ दिसम्बर १९३६) डा० वासुदेवशरण को बताया कि यह कथा कुमुदवती की प्राचीन कथा से संबंधित है जिसमें शूर्पक और कुमुदवती नायक-नायिका के रूप में आते हैं। कुमुदवती को शूर्पक से प्रेम हो जाता है किंतु वह उसे प्यार नहीं करता किंतु कामदेव से विजित होकर वह उसे प्रेम करने लगता है। अश्वघोषने अपने बुद्धचरित्र (१३) (११) और सौंदरानंद(८) (४४) मे इसका उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय इस प्रेम कथा का यथेष्ट प्रचार था।[3]

कामदेव का रूपान्तर सतरहवीं शताब्दी के एक चित्र में चित्रित किया है जिसमें वह शुक पर सवार हाथ में ईख का धनुष जिसकी भ्रमरावली की प्रत्यचा है, तथा पुष्पों के बाण लिये हुए है। सूरदास ने शुक को मन का प्रतीक माना है[4]। अतः यह बात हमारे सामने आती है कि कामदेव मन पर सवार है। ईख सरसता का तथा भ्रमरावली गायन और पुष्प-बाण बसन्त से संबंधित है। इसी बसंत की सहायता से वह युवक और युवतियों के हृदय पर प्रहार करता है।

'स्मर दीपिका' के अनुसार कामदेव का अधिष्ठान पद, गुल्फ, ऊरु, भग, नाभि, कुच, हृदय, कंठ, ओष्ठ, गण्ड, चक्षु, कर्ण, ललाट, मस्तक और केशों पर रजोतिथि के अनुसार होता है।

यूनान और रोममें भी कामदेव की मानता है। उनकी यह भावना बहुत कुछ भारतीय भावना से मिलती है। यूनानी

3. Journal of the Society of oriental art 1937 Page130,

४. सुवा वा बन को चलु रस लीजै।
(सूरसागर)

इसको इरोज और रोमन क्यूपिड़ कहते हैं। इसका चित्र दो पंख वाले चंचल बालक के रूप में किया जाता है। इसकी स्त्री का नाम साइक तथा माता का नाम अफोदिति है जो प्रेम और सौंदर्य की देवी मानी जाती है। इसका कमल-नाल का धनुष तथा पुष्पों का तूणीर है।

कहते हैं कि जब तार्तम क्रोनस ने अपने पिता उरेनस को मारकर समुद्र में बहादिया तो उसके रक्त रंजित बैजनी फैन से अफोदिति का जन्म हुआ। यूनानी भाषा में अफोस शब्द का अर्थ फेन है। अतः अफोस से उत्पन्न होने के कारण उसे अफोदिति कहते हैं। केथारी द्वीप के पास इसका जन्म हुआ तथा वहाँ से समुद्र की लहरें बहाकर इसे साइप्रस ले आईं। तब से यह दोनों द्वीप इसके प्रिय स्थान हैं। इसका पति हेफस्टीज (रोमनों का बलकन) लंगड़ा और बदसूरत है। अतः यह बहु जन विलासिनी है। समय-समय पर अनेक देव और मानव पुत्र इसकी रूप शिखा में पड़कर भस्म हो गये।

यह अफोदिति भारतीय श्री (लक्ष्मी) का ही रूप है जो समुद्र से उत्पन्न होती है तथा विष्णु (पुरातन पुरुष)[1] जैसे वृद्ध पुरुष को पाकर एक स्थान पर नहीं टिकती और बिलासिनी बन जाती है। वह श्वेत द्वीप में विष्णु के साथ रहती है। पौराणिक कथाओं में श्री का पुत्र कामदेव बताया गया है। इसके भी पुष्प के बाण और धनुष हैं। जिस प्रकार चैत्र के आरम्भ में यहां कामदेव सम्बन्धी उत्सव आरम्भ हो

---

१. कमला थिर न 'रहीम' कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय॥
(रहीम)

जाते हैं उसी प्रकार यूनान में भी चैत्र महीने में अफ्रोदिति की पूजा होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बसंत और काम का यह प्राकृतिक रूप पौराणिक काल में दैवी रूप धारण कर लेता है और ससार में ये दोनों पूजित हो जाते हैं। इनका वर्णन काव्य में 'सुंदर' के प्रतीक के रूप में मिलता है। बसंत ऋतु में बसंत और कामदेव के अनेक उत्सवों की स्थापना हुई है जो प्राचीन काल से आज तक चले आते हैं—

पहिले हम उसके उत्सवों की परम्परा पर विचार करेंगे। इसके पश्चात् बसंत के साहित्यिक रूप पर कुछ प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे जिससे सूर के बसंत वर्णन पर कुछ प्रकाश पड़ सके।

प्राचीन भारत में मदनोत्सव

मत्स्य पुराण (७, १०-२६) में मदन द्वादशी का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह व्रत चैत्र शुक्ला १२ को धारण करना चाहिए। इस व्रत का विधान इस प्रकार बताया गया है कि एक कलश लेकर उसे चावलों से भरकर उसमें ऋतु फल तथा ईख के गाँडे रखे तथा उसे स्वेत वस्त्र से अच्छादित कर चन्दन से चर्चित करे। गुड़ से भरे हुए ताम्र-पात्र में यथाशक्ति स्वर्ण रखकर उसके ऊपर स्थापित करे। उसके ऊपर केले के पत्ते पर कामदेव की मूर्ति स्थापित करे। फिर चन्दनादि गंध धूप दीप नैवेद्यादि से पूजन कर गायन-वादन कर कामदेव और श्री कृष्ण कथा का वर्णन करे। फिर यथा शक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराकर आप अलोना खावे तथा फल खाकर भूमि पर शयन करे। त्रयोदशी को विष्णु का पूजन करे। बारह महीने इस प्रकार व्रत रखकर तेरहवे महीने में घृत की गौ बनाकर उसका दान करे तथा शैया दान दे। इस व्रत के करने से मनुष्य सब पापों से छूटकर विष्णु में लीन हो जाता है तथा इस लोक में उत्तम पुत्रों को प्राप्त कर अनंत सौभाग्य फल को भोगता है।

गरुण पुराण (१, ११७, १-१५) में लिखा है कि मदन त्रयोदशी का व्रत साल भर चालू रखा जाय अर्थात् अगहन की अनङ्ग-त्रयोदशी से आरम्भ कर कार्तिक की मदन-त्रयोदशी को समाप्त किया जाय। इसमें प्रति महीने में शिवजी की भिन्न-

भिन्न मूर्ति के पूजन का निर्देश किया गया है। उद्यापन तथा व्रत समाप्ति के अवसर पर काम और रति को होमादि कर पूजन करने को कहा गया है। नृत्य गीत कर रात्रि जागरण का भी प्रस्ताव किया गया है।

भविष्योत्तर पुराण में लिखा है कि कामदेव के भस्म हो जाने पर गौरी ने शिवजी से उसे पुनर्जीवित करने की प्रार्थना की। शिवजी ने वर्ष में एक दिन चैत शुक्ला १३ को उसे अनंग होकर प्रकट होने का वरदान दिया। उसी दिन से सब लोग मदन-पूजनोत्सव करते हैं। इस दिन प्रातःकाल मनोहर मन्मथायतन में जाकर विविध विनोद-केलि की जाती है। मध्यान्ह मदन पूजा, पूजा के पश्चात् मदन को मोदक और मोदक के पश्चात् ब्राह्मण को दक्षिणा से संतुष्ट कर विदाई दी जाती है। अनतर व्रतनिष्ठा रमणी स्वय उस मन्मथायतन में जाकर मन ही मन मदन की अधिष्ठान चिता, उसका ध्यान, तथा भूषण, वसन और माला तथा चंदन से पूजा करती है। रात्रि को पुनः उत्सव का आयोजन होता है। सम्पूर्ण रात्रि जागरण होता है और रात्रि सुख पूर्वक व्यतीत हो, इसके लिए कपूर, कुंकुम, गंध, ताम्बूल और मद्यादि विविध विलासमय सामग्रियों का प्रयोग होता है, तथा दीप मालिका की जाती है।

भविष्य पुराण (४, १३५) में लिखा है कि बसत काल की शुक्ला त्रयोदशी को सेंदुर द्वारा काम और रीति की मूर्तियाँ अंकित कर लोग समारोह के साथ उनका पूजन करें। दोपहर को ब्राह्मण भोज होवे तथा रात्रि को कामदेवके स्थानीय मंदिर में नृत्य, गीत, अभिनय आदि किया जाय। इस उत्सव के उपलक्ष में सम्पूर्ण मंदिर दीपों से सुसज्जित किया जाय।

इस पुराण में इस उत्सव का नाम चैत्रोत्सव भी दिया गया है।

वात्स्यायन से पता चलता है (का० सू० पृ० ४५) कि इस अवसर पर किसी वाटिका की सघन छाया में प्रेखा दोला को झूला लगाया जाता था और छायादार स्थानों में विश्राम के स्थडिल-पीठिकाएं (बैठने का स्थान) बनाये जाते थे। प्रेखा दोला की प्रथा वर्षा ऋतु में ही अधिक थी।

काव्य मीमांसा (पृ० १०५) में चैत्र शुक-सारिकाओं के साथ हारीत, दात्यूह और भ्रमर श्रेणी मद को वर्धन करने वाला और पुंस्कोकिल के मधुर कूजन से चित्त चंचल कर देने वाला कहा है—

चैत्रे मदर्द्धिः शुक सारिकाणां हारितदात्यूह मधुव्रतानाम्।
पुंस्कोकिलानां सहकार बंधुः मदस्य कालः पुनरेष एव॥

भास-रचित चारुदत्त नाटक (प्रथमांक) में इसी प्रकार के एक पर्व का नाम 'कामदेवानुमान' पड़ा है। नाटक के अनुसार कामदेव का चित्र लेकर बाजे बजाते हुए नागरिकों का भारी जलूस निकाला जाता था।

दशकुमार चरित के कथनानुसार बाल चन्द्रिका, प्रमुख सहेलियों के साथ राजायानसार की पुत्री, अवंती सुन्दरी ने उस दिन देहात में स्थिति एक वाटिका में जाकर आम के एक किशोर पेड़ की स्निग्ध छाया में बालू का ढेर बनाकर मदन महाराज की पूजा की थी (१, ५, ४४)। इसी ग्रंथ में एक अन्य स्थान पर संभवतः इसी उत्सव का नाम 'कामोत्सव' दिया गया है। अंग राज्य का शासक एक सायेदार उपवन में हँसी-खुशी के साथ यह उत्सव मनाता रहा। इसी अवसर पर

काममंजरी नाम की एक वेश्या मरीचि मुनि को बहका कर बाजी मार लेगयी। (२, २, ८७-८८)

वर्ष-क्रिया-कौमुदी (पृ० ५३१-३२) में शैवागम से वचन उद्धृत करते हुए कहा गया है कि चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को मदन महोत्सव मनाने के प्रसंग में प्रातः काल एक पहर तक गाने बजाने के साथ गाली गुफ्ता बकते हुए और कीचड़ प्रभृति उछाल कर यह त्यौहार मनाया जाय। फिर दोपहर में लोग वस्त्र आभूषण, माला, गंध द्रव्य आदि द्वारा सजावट करें।

सम्राट हर्ष देव (रत्नावली १, ११–१२) के विवरण से जान पड़ता है कि दोपहर के बाद सारा नगर मदनोत्सव के दिन पुरवासियों की करतल ध्वनि, मधुर संगीत और मृदंग के मधुर घोष से मुखरित हो उठता था। नगर के लोग मदमत्त हो जाते थे। राजा अपने प्रासाद की सबसे ऊपर वाली चन्द्र-शाला में बैठकर नगरवासियों के आमोद-प्रमोद को देखा करते थे। नगर की कामिनियाँ मधुपान करके ऐसी मतवाली हो जाती थीं कि सामने जो कोई पुरुष पड़ जाता उस पर पिच-कारी के जल की बौछार करने लगती थी। बड़े बड़े रास्ते के चौराहे मर्दल नामक बाजे के घोष और चर्चरी की ध्वनि से शब्दायमान हो उठते थे। ढेर का ढेर सुगन्धित अबीर दशों दिशाओं में इतना उड़ता रहता था कि दिशायें रंगीन हो उठती थी। जब नगरवासियों का आमोद पूरे चढ़ाव पर आ जाता तो नगरी के सारे राजपथ केशर मिश्रित अबीर से इतने भर उठते थे मानो ऊषा की छाया पड़ रही हो। लोगों के शरीर पर शोभायमान अलकार और सिर पर पहिने हुए अशोक के लाल फूल, इस लाल पीले सौंदर्य को और भी बढ़ा देते थे। ऐसा जान पड़ता था कि नगरी के सभी लोग सुनहरे रंग में डुबो दिए गये हैं।

राजकीय प्रासाद तथा अन्य समृद्धिशाली भवनों के सामने वाले आँगन में निरंतर फव्वारा छूटा करता था, जिससे अपनी-अपनी पिचकारी में जल भरने की होड़ सी मची रहती थी। इस स्थान पर और युवतियों के बराबर आते रहने से उनकी मांग के सेंदूर और गाल के अबीर झरते रहते थे। सारा आँगन लाल कीचड़ से भर जाता और फर्श सिंदूरमय हो जाता था।

इस अवसर पर त्रयोदशी के दिन अशोक में अशोक-दोहद उत्पन्न किया जाता था। किसी सुन्दर स्त्री को सब प्रकार के सुंदर आभरण पहिनाकर उसके पैरों में लाल महावर लगाई जाती थी और नूपुर धारण कर बाँये चरणसे अशोक वृक्ष पर पाद-प्रहार किया जाता था जिससे समस्त वृक्ष अशोक पुष्पों से भर जाता था। मालवकाग्निमित्र में इसका उल्लेख मिलता तथा सरस्वती कठाभरण में इस उत्सव का नाम 'अशोकाँत-सिका' कहा गया है।

'रत्नावलि' नाटिका से इस संबंध में कुछ और भी बातें सामने आती हैं। इसमें लिखा है कि रानी वासवदत्ता अशोक वृक्ष के नीचे कामदेव की पूजा करती थी और उसने काम पूजन का वही प्रशस्त स्थान माना है।

अशोक पुष्प काम का एक बाण होते हुये तथा अशोक वृक्ष का प्रशस्त स्थान होने पर भी कामदेव को आम्रमंजरी ही भेंट की जाती है। अभिज्ञान शाकुन्तल (६ अङ्क) में इसी का उल्लेख मिलता है।

वात्सायन काम सूत्र तथा सरस्वती कंठाभरण में जहाँ मदन महोत्सव का उल्लेख आता है, वहाँ वसंत ऋतु के कुछ

और भी खेलों का उल्लेख मिलता है। स्त्रियाँ चैत्र की चौथ से अष्टमी तक 'अष्टमी चंद्रक' करती हैं। जिस चौथ को स्त्रियां स्त्रस्तर पर डोलती हैं उसे 'कुंद चतुर्थी' कहते हैं। बसंत के आरंभ में 'सुवसंतक' होता है। जिस चौथ को स्त्रियाँ दोला पर बैठें उसे 'आन्दोलन चतुर्थी' कहते हैं। रघुवंश (९, ४६) में सभी लोगों का हिडोले पर झूलने तथा 'मालवकाग्निमित्र' में इरावती के मुख से इसी हिडोले की कथा कहलवाई गई है। एक सपुष्प शाल्मलि पर चढ़कर 'सुनीमीलितक' आदि खेल 'शाल्मली क्रीड़ा' कहलाते हैं। गंधोदक से भरे हुए वासनाड़ी आदिको को ले उनसे प्यारों का अभिषेक 'उदकदवेडिका' कहलाता है। सुंदर स्त्रियों द्वारा पाद प्रहार कर अशोक को पल्लवित करने का नाम 'अशोकातलिका' तथा आम्र मंजरियों द्वारा एक दूसरे को सजाना 'चूत मंजीरिक' कहलाता है। जिसमें स्त्रियां मदिरा के कुल्लों से बकुल को विकसित कर फिर उससे पुष्पों का चयन करती हैं। वह 'पुष्प-चायिका' है। तुझे प्यारा कौन ? इतना पूछने पर, जो प्रियजन पलाश आदि की नई लताओं से मारा जाता है उसे 'चूत लतिका' कहते हैं। बसंत समय में नगर से बाहर जाकर विनोद करना 'वनयात्रा' कहलाती है।

इन प्राचीन उत्सवों में से प्रायः सभी उत्सवों का लोप होगया है केवल बसंत-पंचमी, दोलोत्सव और वनयात्रा (वनविहार) व्रज में आज भी प्रचलित है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक श्लोक मिलता है—

चंदनागुरुकस्तूरी कुंङ्कुमद्रव संयुतम्।
अबीर चूर्ण रुचिरं गृहयतां परमेश्वरे॥

इस श्लोक में श्रीकृष्ण-अबीर-प्रदान की कथा देखकर ही हम उसे होली का सूत्र मान सकते हैं। श्रीकृष्ण मदनोत्सव

में अबीर लगाते थे, यही उस समय का खेल कहा जा सकता है अन्यथा इसका वर्णन मदनोत्सव से सर्वथा भिन्न है।

सूरदास ने अपने काव्य में इन्हीं उत्सवों का अर्थात् बसंत-पंचमी, होलिकोत्सव, दोलोत्सव और वनयात्रा को लेकर ही फागु-संबंधी रचनाएं की हैं।

ब्रज के बसंतोत्सव

बसंत–पंचमी

माघ के शुक्ल पक्ष की पंचमी 'बसंत-पंचमी' कहलाती है। लोक में प्रसिद्ध है कि इसी दिन कामदेव का जन्म हुआ था। यही 'श्री पंचमी' भी कहलाती है। मत्स्य सूक्त के ५५ वें पटल पर लिखा है कि सूर्य के मकर राशि पर स्थित होने से लक्ष्मी सह जगद्धात्री को स्नान कराकर पूजा करनी चाहिये। इसी दिन रति और कंदर्प की भी पूजा करनी चाहिये। इस दिन बसंत-राग सुनने से अभीष्ट श्री लाभ होता है। 'हरि-भक्ति-विलास' में लिखा है कि उपर्युक्त प्रकार से पूजन करने से वह बसंत के समान प्रिय हो जाता है। पूजा में नव प्रवाल, नव कुसुम,अनुलेपन और दान अति आवश्यक हैं। इस दिन बसंत राग मय संगीत नृत्यादि करे। 'सरस्वती कंठाभरण' (पृ० ५७५) के अनुसार जिस दिन बसंतावतार हो उसे 'सुवसंतक' कहते हैं। इस दिन बसंत का प्रथम बार प्रादुर्भाव होता तथा विलासिनी स्त्रियाँ दुष्प्राय नव आम्र-मंजरी धारण कर ग्राम को जगमगा देती थीं। यह बसंत-पंचमी के दिन पड़ता है अतः बसंत-पंचमी ही 'सुवंसतक' है।

ब्रज में सरसों की खेती बड़े पैमाने पर होती है। बसंत-पंचमी तक समस्त खेतों में सरसों के फूल छा जाते हैं।

जिससे धरा बसंती बन जाती है। ब्रज के रीति कालीन[1] तथा लोक गायकों ने इस फूली सरसों के अथक गीत गाये हैं किंतु आश्चर्य की बात तो यह है कि सूरदास ने इस सरसों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया।

ब्रज में इस दिन प्रायः समस्त तरुणियाँ और तरुण बसंती वस्त्र धारण करते हैं तथा केसरिया रंग का ही भोजन करते हैं। इसमें केसरिया खीर को विशेष महत्व दिया जाता है। इस दिन पूजन के लिये गुड़िया और गुड्डे बनाये जाते हैं जो विविध वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित किये जाते हैं तथा इनका सरसों के पुष्पों से पूजन कर बेर और रेवड़ी का भोग लगाते हैं। मंगनी की हुई लड़कियों की ससुराल से सुंदर-सुंदर बने हुए गुड्डे-गुड़िया तथा भांति-भांति के पकवान मिठाई और लड़की के लिये वस्त्राभूषण आते हैं, जिन्हें पहिन कर वह गुड़िया-गुड्डों की पूजा करतीं हैं। इसके पश्चात् मिठाई आदि का भोग लगाकर जातिवालों में वितरित की जाती है। इस पूजा को हम कह सकते हैं कि यह रति और कामदेव पूजन का प्रतीक मात्र है।

---

१. सरसों के खेत में बिछायत बसंती बनी,
तामें खड़ी चाँदनी बसंती रतिकंत की।
सोने के पलंग पर बसन बसंती साज,
सोनजुही मालें हालें हिय हुलसंत की।
'ग्वाल कवि' प्यारे पुखराजन को प्याली पूर,
पियाबत पिया कों करैं बात बिलसंत की।
राग में बसंत, हाव-भाव में बसंत, फूल्यो-
लाग में बसंत क्या बहार है बसंत की।
'ग्वाल कवि'

मंदिरों में इसी दिन से होली आरंभ होती है तथा गुलाल उड़ना आरंभ हो जाता है। इसी दिन से धमार गाई जाती है परंतु पानी की होली नहीं होती। पानी की होली फाल्गुन शुक्ला ८ से आरंभ होती है जो फाल्गुनी पूर्णिमा तक चलती रहती है।

नंदगाँव-बरसाने की लठामार होली

पौराणिक साहित्य में कृष्ण के पिता नंदराय और राधा के पिता वृषभानु को राजा के रूप में चित्रित किया गया है। 'गर्ग संहिता' के अनुसार नौ लाख गौओं के स्वामी को नंदराय तथा छह लाख गौओं के अधिपति को वृषभानु संज्ञा दी गई है। किंतु यहाँ राधा और कृष्ण का जो रूप अंकन किया गया है वह जन-जन का जीवन है जिसमें सभी राजा और रंक मिलकर एक दूसरे में दुख-सुख के साथी बनते हैं। राधा रसीली रसिकराज कृष्ण की प्रियतमा है। उनके संबंध नित्य हैं तथा नित्य गोलोक से प्रकट लीला करने भक्तों के हेतु ब्रज में अवतरित हुए हैं। होली के अवसर पर कभी नदगाँववासी वृषभानु की पौरि पर और कभी बरसानेवासिनी राधा प्यारी नँदगाँव की डगर में पहुँच जाती हैं। नंदगाँव और बरसाने वाले उसी नाते से आज भी होली खेलते हैं। फाल्गुन शुक्ला ९ को नंदगाँव के हुरियारे वृषभानु किशोरी राधा के गाँव बरसाने में आते हैं। श्री लड़ैतीलाल के मंदिर में उनकी ठंडाई भाँग से पहुनाई की जाती है और तब नंदगाँव वाले श्री राधा जी की विरुदावलि रूप में निम्नलिखित 'पुरुषोत्तम प्रभु' का रसिया गाकर उन्हें होली खेलने का आह्वान करते हैं—

दरसन दै निकसि अटा में ते।
कोटि रमा सावित्री भवानी, तेरे निकसी अंग छटा में ते।
तू है श्री वृषभानु नंदिनी, जैसे निकस्यौ चंद घटा में ते।
'पुरुषोत्तम प्रभु' यह रस चाख्यौ, जैसे माखन निकस्यौ मठा में ते।

इसके पश्चात् समाज आरंभ होती है। इसमें राधा-कृष्ण के प्रतीक रूप बरसाने और नंदगाँववाले राधा के मान, अभिमान, पद आदि का सरस गीतमय साहित्य इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि अपने-अपने पक्ष की दोनों ही श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। यहाँ तक कि संगीतमय गालियाँ भी गाई जाती हैं। इनमें सरसता होती है, माधुर्य होता है और किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप न होकर कृष्ण के जीवन से ही संबंधित होती हैं। इसके पश्चात् रंगभरी होली आरंभ होती है। नंदगाँववासियों पर रंग डाला जाता है और सब मंदिर गुलाल और रंग से भर जाता है। बीच-बीच में 'लाड़लीलाल की जय' के नारे लगाये जाते हैं। यहां लाड़ली का अर्थ राधा की जन्म-भूमि के अनुरूप प्रिय पुत्री तथा लाल का अर्थ लाला अर्थात् दामाद के रूप में लिया जाता है जो बरसाने वाले श्री कृष्ण के लिये प्रयुक्त करते हैं। व्रज में दामाद को लाल अथवा लाला या लालजी कहने की प्रथा है।

इसके पश्चात् नंदगाँव के हुरियार रसिया और गीत गाकर जैसे ही बरसाने वाली राधा प्यारी की उत्तराधिकारिणियों को छेड़ते हैं वैसे ही वह उन्हें 'रंगीली गली' में घेर लेती हैं और उन पर डडे बरसाना आरंभ कर देती हैं जिसे नंदगाँववासी सिर पर मुड़ासा बांधे हुये, हाथ में लिये हुए सींग और ढाल पर रोकते हैं। यह खेल बड़ी देर तक चलता रहता है। कभी २ ऐसा होता है कि खेल ही खेल में किसी

हुरियारे के रक्त निकल आता है तो वह उसी स्थान की मिट्टी उठाकर उस घाव में भर लेता है और वह फिर होली खेलने लगता है। यह घाव बिना किसी दवा की अपेक्षा किये हुए शीघ्र ही भर जाता है, ऐसा प्रभाव उस पवित्र भूमि का वहाँ प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है।

इस होली के समाप्त होने पर बरसाने की गोरी घटायें नंदगाँववासी किसी कृष्ण के वंशज को लँहगा-ओढ़नी पहिनाकर भानोखर (वृषभान सरोवर) का पूजन करवाती हैं। उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि 'ऐसो रस बरसै बरसाने जैसो बैकुंठहु में नाँहि।'

दूसरे दिन इसी प्रकार बरसाने वाले नंदगाँव जाकर होली खेलते हैं और जब लठामार होली होती है तो वे उनके वारों को रोकने का निरंतर प्रयत्न करते हैं। इनके साथ एक ध्वजा होती है जिसे वे निरंतर उठाये रहते हैं। जब यह लोग ध्वजा लेकर वापिस आते हैं तो बरसाने की गोपियां उनको लोकगीत और लोकनृत्य दिखाकर नयनाभिराम दृश्य उपस्थित कर देती हैं।

आन्योर और जतीपुरा की होली

गोवर्धन से जब कृष्ण द्वारा उठाये गये गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा को जाते हैं तो पहिले आन्यौर नामक गांव पड़ता है और जब परिक्रमा लौटती है तब आन्यौर के ठीक दूसरी ओर जतीपुरा नामक ग्राम पड़ता है। यहीं श्री गोवर्द्धन नाथ का मुखारविंद है तथा होली के लिये सब लोग इसी स्थान पर इकट्ठे होते हैं। यहाँ लोग पहिले रसिया गाते तथा नृत्य करते और इसके पश्चात् लठामार होली आरंभ हो जाती है।

आन्योर में होली तो इसी प्रकार की होती है किंतु इसे परिष्कृत रूप कहा जा सकता है। इसमें स्त्री और पुरुष दोनों ओर से गाते और नृत्य करते हैं। नृत्य करते-करते स्त्रियाँ कुछ आगे बढ़ आती हैं अथवा पुरुष कुछ आगे बढ़ जाते हैं तब स्त्रियाँ जो हाथों में छोटे-छोटे डंडे लिये रहती हैं, धीरे से पुरुषों को नाचते-नाचते छुला जाती हैं और खेल को अधिक रसमय बना देती हैं।

जाय-बठैन की होली

यहाँ भी अन्य स्थानों की भाँति ही होली होती है किंतु यहाँ बरसाने के लट्ठ रोकने के लिये सींग और ढालों का प्रयोग नहीं होता अपितु बबूल की जेरी बनाकर लट्ठों को रोका जाता है।

फालेन की होली

यहाँ पूर्णमासी के दिन गाँव के बाहर मैदान में बड़े बीच में होली की अग्नि प्रज्वलित की जाती है तथा गाँव का एक पंडा केवल एक वस्त्र पहिने हुए इस जलती होली को बिना किसी शारीरिक क्षिति के पार कर जाता है। इसके लिये उसे विधि-विधान से रहना पड़ता तथा व्रत इत्यादि करने पड़ते हैं। यह दृश्य हिरण्याकश्यप के समय प्रहलाद और ढुंढ़ा की कथा सहज ही स्मरण करा देते हैं।

दाऊजी का हुरंगा

चैत्र कृष्णा २ को श्री दाऊजी के मंदिर में हुरंगा होता है। हुरंगे से पर्व समाज जुड़ती है और मध्यान्ह में हुरंगा आरंभ हो जाता है। इसमें स्त्रियां कोड़ा ले-ले कर पुरुषों के

ऊपर प्रहार करती हैं और पुरुष उन पर रंग, गुलाल आदि डालते रहते हैं। इस से मंदिर का समस्त वातावरण धुंधरित हो उठता है। एक ओर लोक-गायक अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों को झंकृत करते हुए लोक-गीत गाकर उनका मनोरंजन तथा उत्साह वर्धन करते रहते हैं। इनके मध्य में एक ध्वजा होती है। जो स्त्री और पुरुष वर्ग में से इस ध्वजा को ले जाता है उसी की जीत समझी जाती है और हुरंगा समाप्त हो जाता है।

मंदिरों की होली

ब्रज की उपर्युक्त परम्परा का रूप यहाँ के मंदिरों में भी दिखाई देता है। यहाँ ठाकुर जी की होली बसंत-पंचमी से ही आरंभ हो जाती है जिसमें होली के प्राथमिक रूप में गुलाल-अबीर फेंक कर आरंभ किया जाता है तथा डफ और बम पर रसिया गाये जाते हैं। समाजी लोग ध्रुपद और धमार गाते हैं। सध्या समय ढाढ़ा-ढाढ़ी का नृत्य होता है जिसमें लोग विविध रूप धारण कर भगवान के समक्ष नाचते हैं।

फाल्गुन की अमावस्या के पश्चात् गीली होली[1] आरंभ हो जाती है जिसमें बड़ी-बड़ी पिचकारियों से मंदिर के पुजारी दर्शकों पर रंग डालते हैं।

आज से कुछ वर्ष पूर्व मथुरा के दाऊजी-मदनमोहन जी के मंदिर में ऐसी प्रथा थी कि फाल्गुन शुक्ला ९ तथा ११ को

---

१. गीली होली से तात्पर्य यह है कि इसमें सूखा रंग ही नहीं अपितु टेसू के रंग का बनाया हुआ जल भी पिचकारी अथवा डोलचियों में भर कर दर्शकों पर डाला जाता है।

मंदिर से ठाकुर जी की सवारी उठती तथा होली दरवाजे से विश्रामघाट होती हुई बंगालीघाट पर बगीचे में पधारती थी तथा इसी दिन से रंगभरी होली आरंभ हो जाती थी।

यही दशा वृंदावन के मंदिरों में होती है यहां भी गुलाल अबीर तथा रंगभरी होली होती है। किंतु यहाँ फाल्गुन की एकादशी से ही आरंभ होती है।

चौपई

यहाँ ब्रज में ऐसी प्रथा है कि होली के अवसर पर पृथक्-पृथक् गलियों के लोग एक स्थान पर बम (बड़ा नगाड़ा जो गाड़ी पर रख कर खेंचा जाता है) लेकर इकट्ठे होते हैं इनके साथ डफ, ताल, उपंग, ढोलक, नगाड़े, मंजीरा आदि वाद्य रहते हैं। यह गाते बजाते हुए गली-गली में जातेहैं। इनको देखकर कुछ स्त्रियाँ इन पर रंग गुलाल डालती हैं। कोई पानी डालती और कहीं-कहीं युवतियाँ गीत भी गाती हैं।

ब्रज में अब भी गाँव-गाँवों में तथा मथुरा की कितनी ही जातियों में अब भी इसी प्रकार की चौपई निकलती हैं किंतु माथुर चतुर्वेदियों में इसका परिष्कृत रूप हमारे सामने आता है। यह लोग अपने-अपने अखाड़ों में उक्त अवसर के लिये गायनों की रचना करते हैं, जिन्हें यहाँ होली की तान कहते हैं तथा होली के पश्चात् सुंदर-सुंदर वस्त्र धारण कर उन चौपाइयों को नगाड़े और तालों पर गाते हुए निकलते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन है। चौपाई शब्द से यदि हम यह आशय लें कि उक्त अवसर पर चौपाई छदों में रचना कर गाई जाती होगी तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। आज भी प्राचीन ऐसी तानें हैं जिनका संबंध

चौपाई छंद से है जो हमें कवि 'स्वयंभू' काल के उक्त छंद में रचना की याद दिलाते हैं। सूरदास ने अपने एक पद में इसी प्रकार की चौपाई का उल्लेख किया है जिससे उसका यथार्थ चित्र हमारे सामने खिंच जाता है। सूरदास का एक पद इस भाँति है—

ब्रज की बीथिनि-बीथिनि डोलत।
मदन गुपाल सखा संग लीन्हे, हो हो हो हो बोलत।

फूल डोल (पुष्पदोलोत्सव)[1]

वैसे तो 'आन्दोलन चतुर्थी' का उल्लेख 'सरस्वती कंठाभरण' में मिलता है जिसमें बसंत में स्त्रियां झूला-झूलती थीं।

---

१. 'वाचस्पति संस्कृत कोश' (पृ० ३७६१) में श्री ठाकुर जी के होलिकोत्सव के संबंध में वृहद् प्रकाश डाला है—

'पद्मपुराण' में लिखा है कि आषाढ़ मास में रथ यात्रा, तथा श्रावण और चैत्र मास में दोलोत्सव सौ कामों को भी छोड़ करना चाहिये। 'गरुड़ पुराण' के अनुसार चैत्र शुक्ल पक्ष में श्री ठाकुर जी को डोला में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके पधरावै। 'हरि भक्ति विलास' के अनुसार चैत्र शुक्ला ३ को दोलोत्सव करना चाहिये। इसी में लिखा है कि चैत्र शुक्ला १२ को प्रातःकाल नित्य-कर्म समाप्त करके दोलोत्सव करे। सामान्य वैष्णव गीत नृत्यादि करैं। दिन में इस महोत्सव को करने के पश्चात् रात्रि में जागरण कर भगवान के गुणानुवाद गावें।

रघुवंश और मालवाग्निमित्र में हिंडोले के झूलने का वर्णन आता है किंतु ब्रज में श्रावण की भांति यहाँ झूला नहीं झूला जाता केवल मंदिरों में ही दोलोत्सव मनाये जाते हैं। 'सरस्वती कंठाभरण' में 'पुष्प-चायिका' का और वर्णन मिलता है जिसमें पुष्पों को एकत्रित किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस ऋतु में पुष्पों के बाहुल्य से ठाकुरजी को समर्पण अथवा शृंगार करने के हेतु पुष्प-चयन किये जाते और फिर ठाकुर जी को पुष्पों से शृंगार करके डोला में झुलाते होंगे किंतु यह दोलोत्सव यहाँ चौथ को नहीं चैत्र कृष्ण १ को ही हो जाता है।

यह फूलडोल का उत्सव केवल वैष्णव मंदिरों में ही नहीं अपितु सभी देवी-देवताओं के मंदिर में किया जाता है और इस प्रकार यह दोलोत्सव चैत्र शुक्ला १ से चैत्र शुक्ला १५ तक चलते रहते हैं।

वन–यात्रा

काम सूत्र में बसंत-ऋतु में उद्यान-यात्राओं और वन-यात्राओं का उल्लेख मिलता है। इसमें लोग घोड़ों पर चढ़कर नगर से कुछ दूर चले जाया करते थे। इनके साथ २ गणिकाएँ जाया करती थीं और कभी-कभी गृह देवियां भी हुआ करती थीं[1]। इसमें मुर्गा, बटेर, लवा, मेष और भेड़ों की लड़ाईयाँ

---

१. ब्रज में वृंदावन नामक स्थान पर श्री रंगजी का प्रसिद्ध मंदिर है। यहाँ होली के पश्चात् एक मेला लगता है जिसमें चैत्र कृष्णा ६ के

हुआ करती थीं जिसमें पशु-पक्षी लहुलुहान हो जाते थे। इस नृशंसता को देखकर ही अशोक ने इस प्रकार के युद्धों की मनाही करदी थी जो उसके शिला लेखों पर यत्र-तत्र पाये जाते हैं। यह उद्यान अथवा वन यात्रायें इतनी दूर ही हुआ करती थीं जिसमें एक दिन में वापिस आया जा सके।

इस प्रकार की यात्रा का व्रज में भी उल्लेख मिलता है किंतु यहाँ इसका विलासमय रूप नहीं प्रत्युत् भक्तिमय रूप ही दिखाई पड़ता है। मथुरा के आस-पास चारों ओर व्रज प्रदेश में जंगल ही जंगल हैं। भगवान कृष्ण की यह क्रीड़ास्थली है। इसलिए वैशाख मास की पूर्णमासी को (जो बसत का अंतिम दिन है) यहाँ से लोग टोलियां बनाकर नगर की परिक्रमा

दिन ठाकुरजी रथ पर सवार होकर एक पुष्पोद्यान (बगीचा) में पधारते हैं। दूसरे दिन आतिशबाजी होती है। इसके पश्चात् जब सवारी बाग से वापिस आती है तो मार्ग में भील लूटने की लीला होती है। ठाकुर जी जब महल में पधारते हैं तो ठकुरानी जी उनको महल में नहीं घुसने देतीं और उन पर वेश्यागमन का दोष लगाती हैं। अंत में ठाकुरजी जमुना जी डूबने जाते हैं तो ठकुरानीजी उन्हें मना लाती हैं और यमुना स्नान लीला के पश्चात् मेला समाप्त होता है। हमारी समझ में इस मेले की पृष्ठ भूमि इसी प्रकार की बसंत ऋतु की वन-यात्रा से संबंधित है।

श्री आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी वैशाली की नगर वधू' नामक ग्रंथ में भी इस प्रकार की 'वन-यात्रा' का उल्लेख दिया है।

करने चले जाते हैं। इनके साथ विविध वाद्य यंत्र होते हैं और यह लोग भजन-कीर्तन करते हुए रात भर परिक्रमा देते हैं जिस स्थान पर इनका जी चाहता है उस स्थान पर ठहर जाते तथा गाते बजाते रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की यात्राओं को यह रूप देने का श्रेय उन महात्माओं को है जिन्होंने ब्रज को केन्द्र बनाकर भागवत धर्म का प्रचार किया। यहाँ यह परिक्रमा 'वन विहार' नाम से प्रसिद्ध है। सूर ने भी इसी प्रकार वन-विहार का वर्णन किया है।

समाज

एक प्रकार की सभा का नाम समाज है। इस प्रकार की सभाएँ सरस्वती मंदिर में नियति तिथि को हर पखवारे हुआ करती थीं। इसमें संस्कृत नागरिक सदस्य हुआ करते थे। इस सभा में नाचने-गाने वाले नागरिकों का मनोविनोद किया करते थे। अन्य स्थानों से आये हुए गान और नृत्य के कलाविदों का भी यहाँ प्रदर्शन होता था जिन्हें दूसरे दिन पुरस्कार दिया जाता था। ऐसी समाज कामसूत्र के मतानुसार (पृ० ५०–५१) सरस्वती मंदिर के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी हो सकती थी। रामायण में (अयोध्याकाँड ६७, १४) में लिखा है अराजकता काल में उत्सव और समाज ही ऐसे साधन रह जाते हैं जिनमें नट और नृतक पृविष्ट होकर भाग ले सकें।

वैसे समाज शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थों में किया जाता है किंतु जहाँ तक गान और नृत्य से समाज शब्द का संबंध है वहाँ तक ब्रज में इसका प्रयोग एक बहुत सीमित क्षेत्र में किया जाता है। श्री राधावल्लभीय, टट्टी संप्रदाय

तथा वल्लभकुल में होली के अवसर जो धमार आदि होली के रागों का गायन किया जाता है तथा जिसमें कभी-कभी हास्योत्पादक अभिनय का भी प्रदर्शन होता है। ऐसे गान और नृत्य से सबधित व्यक्तियों का नाम समाज है। सूरदास ने बसंत का वर्णन करते हुए प्रथम समाजोल्लेख किया है। (पद संख्या २)

वैसे तो यहां मंदिर द्वारिकाधीश तथा अन्यान्य मंदिरों में भी होली के अवसर पर सामूहिक गान होता है किंतु अब वे केवल धमार-गायन के नाम से ही प्रसिद्ध है।

बसंत काव्य परम्परा

कालिदास का बसंत वर्णन

जैसा कि हम कामदेव और बसंत के संबंध में बता चुके हैं, बसंत का वर्णन कामदेव के साथ उसके मानवी रूप में कितने ही पुराणों में मिलता है किंतु बसंत का महत्व अपना एक पृथक् भी स्थान रखता है जिसमें वह एक ऋतु के रूप में तथा शृंगार रस के आलंबन के रूप में भी मिलता है। महाकवि कालिदास ने अपने 'कुमारसंभव' नामक ग्रथ में अपनी कथा का कथानक पौराणिक ग्रंथों से लेकर भी उसकी ऋतु संबधी मूल भावना का नाश नहीं होने दिया है वह जहाँ कामदेव का सखा है वहाँ वह प्रकृति रूप में वसुंधरा को अपने सौरभ से दिग्दिगंत भरने वाला भी है।

इस ग्रंथ में लिखा है जब तारकासुर का जोर बढ़ा और वह किसी प्रकार भी नाश नहीं हो सका तो उन्हें ज्ञात हुआ कि वह तभी मारा जा सकता है जब शिवजी के पुत्र हो। परंतु शिवजी समाधि में हैं उनकी समाधि को भंग करना

काल का आह्वान करना था। अंत में इंद्र कामदेव को इसके लिये तैयार कर लेता है। वह कहता है कि जिस प्रकार वायु अग्नि को स्वतः प्रेरणा देती है उसी प्रकार बसत भी बिना कहे हुए तेरा सहायक होगा (३, २८)। इस प्रकार स्वामी की आज्ञा पाकर कामदेव शिव के आश्रम में आया। वहाँ उसके आते-ही आश्रम का दृश्य ही बदल गया। कवि कहता है—

असूत सद्यः कुसमान्यशोकः स्कंधात्प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन नापैक्षत सुंदरीणांसंपर्कमासिञ्जितनूपुरेण ॥

लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि बसंत-ऋतु आने पर भी बिना किसी सुंदरी नूपुर सञ्जित चरणों के पाद प्रहार के अशोक का वृक्ष पुष्पित नहीं होता किंतु बसंत और कामदेव ने मिल कर वहां ऐसा कार्य किया कि "अशोक का पेड़ अपने आप ही पुष्पित और पल्लवित हो गया, उसे किसी सुंदरी के नूपुर सञ्जित चरणों के पाद प्रहार की अपेक्षा न रही।"

सद्यः प्रवालोद्गम चारुपत्रे नीते समाप्तिं नव चूतबाणे।
निवेशयामास मधुर्द्विरेफान्नमाक्षराणीव मनोभवस्य ॥

"कामदेव के द्वारा नवीनआम्र (मंजरी) का बाण प्रहार करते ही प्रवाल सदृश लाल-लाल पत्ते (कोंपल) उत्पन्न होगये और बसंत ने उन पर कामदेव के अक्षरों के समान भौंरे बैठा दिये।"

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारं दुनोति निर्गन्धतमस्मचेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्व सृजः प्रवृत्ति ॥

"कनेर के रंग प्रकर्ष हो जाने पर भी उसको अपनी निर्गधता पर दुख हुआ क्योंकि (साधारण प्राणियों को) गुणों

की समग्रता के विधान में ब्रह्मा की प्रवृति विपरीत दिखाई देती है ।"

बालेंदुवक्त्रायविकाशभावाब्दभुः पलाशायंति लोहतानि ।
सद्यो वसंतेन समागतानां नखक्षतनीव वनस्थलीनाम् ।।

"नवीन चंद्रमा के उदय होने पर पलाश पुष्प और भी लाल प्रतीत होते थे । ऐसा प्रतीत होता था कि बसंत ने वनस्थली के ताजे नख-क्षत बना दिये हैं ।"

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्ति चित्रं मुखे मधु श्रीस्तिलकं प्रकाश्य ।
रागेण बालारुण कोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलंचकार ।।

"मधु श्री ने भौंरों के अंजन लगाकर तिलक-वृक्ष का तिलक लगाया और आम्र के प्रवाल ओष्ठ को नवीन अरुण सदृश राग (या अनुराग) से रंग दिया ।"

इस प्रकार मधु श्री के वैभव से अमर कवि अपने काव्य को भर अपने पारवर्ती कवियों के लिये पद-चिन्ह छोड़ गये हैं जिसमें उनको मार्ग-दर्शन तो हुआ ही, साथ ही उन्हें अपनी कला का स्वरूप विकसित करने का भी अवसर प्राप्त हुआ ।

'अभिज्ञान शाकुंतल' (अंक ६) में बसंत-आगमन का वर्णन करते हुये कवि ने आम्र-मंजरी को[1] काम का सबसे तीक्ष्ण बाण बताते हुए उसे कामदेव को अर्पित किया है-

अर्हसिमे चूतांकुरः दत्तः कामस्य गृहति चापस्य ।
पथिक जन युवति लक्ष्यः पंचान्तरितः शरोभवितुम् ।।[1]

---

१. सरस आम की मंजरी, अरिपति हों सिर माथ ।
महाराज कंदर्प के, धनुष लियो जो हाथ ।।

इसी में बसंत-आगम का वर्णन बड़ी सुंदरता से किया गया है। बसंत आगया है परंतु अभी उसका पूर्ण विकास नहीं हुआ है। कलिकाएँ वृक्षों पर लदी हुई हैं परंतु सुगंध उनमें नहीं आई है। राजा शकुंतला के विरह में दुखी है। वह बसंतोत्सव वर्जित कर देता है। कंचुकी की उक्ति है कि राजा की आज्ञा मान कर कामदेव ने भी अपना बाण तरकस से खींचकर अध-बीच में ही उसे रोक लिया है।

चूतानांचिरनिर्गतापिकलिका बध्नन्ति नः स्वंरजः,
सभद्धयदपिस्थितं कुरुवकं तत्कीरकावस्थया ।
कंठेषुस्खलितगतेऽपि शिशरे पुंस्कोकिलनांरुतं,
शंके संहरितस्मरोऽपि चकितस्तूनार्द्धकृष्टं शरम् ॥

इसमें भी बसंत को उद्दीपन के रूप में ही प्रयोग किया गया है। कालिदास की एक अन्य रचना है जिसका नाम 'ऋतु-संहार' है इसमें ऋतु वर्णन किया है। इस षट् ऋतु वर्णन में ही बसंत (सर्ग ६) का वर्णन आता है। कवि ने एक योद्धा के रूप में इसका आगमन वर्णन किया है—

तू पांचन में हूजियों सबसे तीखो बान ।
परदेसिन की तियन के छेदन काज परान ॥

१. यह आय घने दिन तें हैं लगी परि देत पराग न आम कली।
कलिलाय कुरे को रह्यौ बिरवा परि लेत नहीं छबि फूलि भली।
रुकि कंठहि कोकिल कूक रही ऋतु यद्यपि शीत गई है चली।
मति खेंचि निषंग तें बान कछू डर मानि धरयो फिर काम बली॥
(अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह)

प्रफुल्लचूतांकुरतीक्ष्णसायको
द्विरेफमालाविलसद्धनुर्गुणः ।
मनांसिवेद्धु सुरत प्रसङ्गिनां
वसंतयोद्धासमुपागतः प्रिये ॥[२]

इस योद्धा के आगमन से समस्त प्रकृति ही अपना स्वरूप बदल देती है ।

द्रुमा स पुष्पा सलिलं सपद्मं
स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धि ।
सुखाः प्रदोषा दिवसाञ्च रम्याः
सर्वं प्रिये चारु तरं वसन्ते ।[३]

इसी में आगे चलकर बसंत के दान का वर्णन है—

वापीजलानां मणिमेखलानां
शशाङ्कभासां प्रमदाजनानाम् ।
चूतद्रुमाणां कुसमान्वितानां
ददाति सौभाग्यमयं वसंतः ।[३]

---

१. हे प्रिय, खिले हुए आम के अंकुर (आम्र-मंजरी) जिसके तीक्ष्ण बाण हैं, भ्रमरावलि प्रत्यंचा है और सुरत में मन को वेधने वाला है, ऐसा बसंत योधा आ रहा है ।

२. हे प्रिये, बसंत काल में सब ही वस्तुएँ रमणीयता धारण कर लेती हैं । वृक्ष पुष्पों से युक्त, जल (जलाशय) कमलों से परिपूर्ण, स्त्रिया कामवती, पवन सुगंधित, संध्या सुख कर और दिन अच्छा लगने लगता है ।

३. यह बसंत वापी के जल को, मणियों से युक्त करधनी को, चंद्रमा को चंद्रिका, पुरुषों को प्रमाद और आम्र-पुष्पों को सौभाग्य-दान करता है । कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि अभी तक शिशिर

इस प्रकार बसंत का वर्णन करते हुए प्रकृति के संयोग शृंगार का कितना उत्तम वर्णन किया है—

पुंस्कोकिलश्चूतरसासवेन
मत्तः प्रियां चुम्बति राग हृष्टः ।
कूजद्वरेफोऽप्ययमम्बुजस्थः
प्रियं प्रियाया प्रकरोतिचाटु ॥[1]

इसी में आगे चल कर कहा गया है कि पुरुष कोकिल के शब्द और भ्रमरों के गुंजार लज्जावती, विनय युक्त कुल वधू के हृदय को भी क्षणमात्र में व्याकुल बना देती हैं—

पुंस्कोकिलैः कलवचोभिरुपात्तहर्षैः
कुजद्भिरुन्मदकलानि बंचासि भृङ्गैः ।
लज्जान्वितं सविनयं हृदयं क्षणेन
पर्याकुलं कुलमृहेऽपि कृतं वधूनाम् ॥

आरंभ में बसंत योद्धा के आगमन का वर्णन किया गया है और अंत में उसी का राज्य स्थापित कर, प्रार्थना के साथ पुस्तक समाप्त की गई है—

आश्रीमञ्जुल मंजरी वरशरः सत्किंशुक यद्धनु—
र्ज्यायस्यालिकुलं कलङ्करहितं छत्रं सिताशुः सितम् ।

में जो घर से बाहर नहीं निकलते थे, वे अब्र पानी के जलों में स्नान करते, स्त्रियां मणिखचित मेखला धारण कर बाहर आतीं, चांदनी में लोग रमण करते तथा स्त्रियां अपने कानों में आम्र-मंजरी धारण करती हैं।

१. प्रेम से परिपूर्ण आम्र के रस को पीकर पुरुष कोयल अपनी प्रियतमा को चूम रहा है तथा कमल के बीच में बैठी हुई भ्रमरी के सामने भ्रमर गुंजन करके अपनी चाटुकरिता प्रकट कर रहा है।

भर्त्तः भो मलयानिलः परभृतो यद्वन्दिनो नोकजि—
त्सोयं वो विपरीतरीतु वितनुर्भद्रं वसंतान्वितः ।।

"जिसका बाण सुंदर आम्र-मंजरी का है। धनुष पलाश-पुष्पका, प्रत्यंचा भ्रमरावलि की और कलंक रहित चंद्रमा छत्र, मदमस्त पवन और कोयल जिसके बंदी गण हैं ऐसे कामदेव (अनंग) बसंत सहित आपको कल्याणदायी हों।"

इसी परंपरा को आगे के सभी कवियों ने अपनाया है किसी ने (विद्यापति) उसे सिरी पंचमी से उत्पन्न बालक माना है तो किसी ने उसको ऋतुराज के रूप में स्वागत किया है। संयोग और वियोग में भी जिस वर्णन के विंदु कालीदास में मिलते हैं, उन्हें कवियों ने अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार ढाल लिया है।

गीत गोविंद

संस्कृत की यह परंपरा कई शताब्दियों तक चलती रही। यद्यपि जन-साधारण की लोक-भाषा अपभ्रंश से अबहट्ट की ओर जाकर क्षेत्रीय भाषाओं का रूप धारण करने लगी थी, फिर भी संस्कृत में अत्यंत सरस रचनायें होती रहीं। पियूषवर्षी जयदेव का 'गीत गोविंद' इसका सुंदर उदाहरण है।

बसंत में श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन गीत गोविंद की अपनी एक अमर देन है। इसमें प्रिया-प्रीतम के मान का वर्णन बड़ा ही सरस बना है। यद्यपि अध्यात्म की दृष्टि से उसका अपना एक पृथक् महत्व है फिर भी साहित्यि की दृष्टि से उसका मूल्य कुछ कम नहीं। बसंत का वर्णन राधा की एक सखी राधा से किस सुंदरता से करती है।

ललित लवंगलता परिशीलन कोमलमलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे॥
विहरति हरिरह सरस बसंते।
नृत्यति युवतिजनेनसमं सखि बिरह जनस्य दुरंते॥
उन्मदमदन मनोरथ पथिक बधूजन जनित विलापे।
अलिकुल संकुलकुसमसमूहनिराकुल बकुलमलापे॥
मृगमद सौरभरभसवंशवदन बदल माल तमाले।
युवजन हृदयविदारणमनसिजनखरुचि किंशुक जाले॥
मदनमहीपत कनक दंडरुचि केसर कुसुम विकाशे।
मिलितशिलीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूण विलासे॥
विगलित लज्जितजगदवलोकनतरुण वरुण कृतहासे।
विरहिनि कृन्तनकुंतमुखाकृति केतकिदंतरिताशे॥
माधविका परिमललिते वनमालिकयाति सुगंधौ।
मुनिमनसामपि मोहन कारण तरुणा कारण बंधौ॥
स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भण मुकलित पुलकित चूते।
वृंदावनविपने परिसरपरिगत यमुनाजलपूते॥
श्री जयदेव भणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृति सारम्।
सरस वसंत समय वनवर्णनमनुगत मदन विकारम्॥

---

१. हे सखी यह कोमल मलय समीर सुंदर लवंग लताओं को आलिंगन कर रहा है। भ्रमर और कोयलादिक पक्षी अपनी मधुर ध्वनि से कुंज-कुटीर में कलरव कर रहे हैं। श्री कृष्ण युवतियों सहित नृत्य करते हुए विहार कर रहे हैं। यह बसंत-ऋतु विरही जनों के लिये अत्यंत दुखदाई होती है।

यह वही बसंत हैं जिसमें काम की तीव्र अभिलाषाओं से पथिक वधू (विरहिणी) उन्मत्त होकर विलाप किया करती हैं और वकुल

इस पुस्तक में गीतों का चयन इस प्रकार है कि कवि पहिले संस्कृत-छंदों में कथा वस्तु का वर्णन करता है। इसके पश्चात् गीत की एक अष्ट ददी कही जाती है। यही क्रम समस्त गीत गोविंद में मिलता है ऐसा प्रतीत होता है कि 'गीत-गोविंद' की रचना बसंत के समय अभिनय के हेतु की गई थी।

पुष्पों पर भ्रमर बैठते हैं, जिससे वकुल वृक्ष झुक जाते हैं।

तमाल वृक्षों के नवीन पल्लवों की कस्तूरी तुल्य सुगंधि से बन व्याप्त है। पलाश पुष्प युवकों (विरही) के हृदय विदीर्ण करने को अपने नख फैला रहा है।

केसर (नाग केसर) के विकसित पुष्प कामदेव के स्वर्ण क्षत्र सदृश दिखाइ देते हैं। उन पर गुंजार करते हुए भ्रमर गण ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कामदेव का तरकस बाणों से भरा हो।

बसंत को देखकर संसार लज्जित हो गया है। इसी को देखकर वरुण वृक्ष फूलने के व्याज से हँसी कर रहे हैं और केसरी पुष्प भालाकार मुख धारण कर विरही जनों के हृदय को वेध रहे हैं।

माधवी और मल्लिका के पुष्पों की सुगंधि से वन अत्यन्त सुन्दर हो गया है। यह मुनियों के मन को मोहने वाला तथा युवक-युवतियों का अकारण ही बंधु है।

आम्र वृक्ष चमेली लता से आलिंगित होकर खिलकर, पुलकित हो रहा है। पास में बहने वाली यमुना के जल से वृन्दावन पवित्र हो रहा है।

श्री जयदेव कृष्ण चरणों का स्मरण करके बसंत-समय का वर्णन कर रहे हैं जो गोपियों के हृदय में काम पीड़ा उत्पन्न करने वाला है।

अपभ्रंश में बसंत[1]

इतना ही नहीं जब लोक भाषा उत्तर प्राकृत का रूप छोड़ कर अपभ्रंश का चोला पहिर रही थी तब भी उसकी आत्मा में वही भाव कार्य कर रहे थे जो उसे संस्कृत में विरासत में मिले थे परन्तु अब इसके साथ लोक गायन और वादन का वर्णन और आ मिला था। सं० ७९० ई० में स्वयंभू कवि ने लिखा—

कुव्वर-णपरू पराइय जावेहिं । फागुण मासु पवोलिउ तावेहिं ॥
पइट्ठु बसंत-राउ आगेंदे । कोइल-कलयलु मंगल सद्दे ॥
अलि-मिहुणेहिं पढ़न्तेहिं । वरहिण रावषेहि णच्चंतेहिं ॥
अंदोला—सय—तोरेंणवारोहिं । ढुक्कु वसंतु अणेय-पयोरेऊहिं ॥
कत्थइ चूअ—वणइ पल्लवहिं । णव-किसलय-फल-फुल्लु ब्भवयहँ ॥
कत्थइ गिरि-सियरहिं विच्छायइँ । खल-मुँह इव मसि-वण्णइँ जायइँ ॥
कत्थइ माहव-मास हों मेइणि । पिय-विरहेण व सूसइ कामिणि ॥
कत्थइ गिज्जइ-वज्जइ मंदलु । णर मिहुणेहिं पणच्चियउ गोदलु ॥
तं तहोंण यरहो उत्तर-पासँहि । जण-मण-हरु जोयण-उद्दसँहि ॥
दिट्ठु वसंत-तिलउ उज्जाणु । सज्जण हियउँ जमे अयमाणु ॥

(रामायण २६।५)

---

१. अपभ्रंश काल में और भी अनेक कवियों ने वसंत का वर्णन किया है जो राहुल जी कृत 'हिन्दी काव्य धारा' से जाना जा सकता है। यहाँ केवल तीन कवियों का वर्णन इस लिये किया है जिससे उस समय की भाषा और भावों का रूप समझ में आ सके। भाषा की दृष्टि से अपभ्रंश का प्रांतीय भाषाओं में परिवर्तन तथा भावों की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का प्रभाव द्रष्टव्य हैं।

इसका अनुवाद इस भाँति है—

कुव्वर नगर पहुँचेउ जव्वहिं फागुन-मास प्रबोलेउ तव्वहिं।
पइसु वसंत-राव आनन्दे। कोइल-कलमल मंगल-शब्दे।
अलि-मियनेहिं बंदीहि पढ़न्तेहि। वहिन वामनेहिं नाचंतेहि।
अन्दोलित-शत-तोरणवारेहिं। ढुक्कु वसन्त अनेक प्रकारहिं।
वहिं कहिं चूत-वनहिं पल्लवितहिं। नव—किसलय—फलफूलुं दभवितहिं।
कहिं कहिं गिरि शिखरा विच्चाया। खल-मुख इव मसि वर्णहिं लाया।
वहिं कहिं माधव-मासहिं मेदनि। प्रिय-विरहेहिं जनु श्वसही कामिनि।
कहिं कहि गावै बाजै मांदर। नर-मिथुनेहिं प्रनाचेंउ गोदल।
सो तिहि नगरहँ उत्तर-पासें। जन मनहर योजन-उद्देशं।
दीख वसंत-तिलक उद्याना। सज्जन हियहिं यथा अप्रमाणा।

—हिंदी काव्य धारा

किंतु इसमें आगे अपभ्रंश अपना रूप छोड़कर लोक भाषाओं की ओर आने लगीं। इसमें अनेक शब्दों का समावेश मिलता है जो अपभ्रंश के नहीं अपितु देशभाषाओं के हैं। इस काल में भी बसंत का वर्णन मिलता है।

कवि अब्दुल रहमान ने (सं० १०१० ई०) अपने 'सन्देश रासक' के तृतीय प्रक्रम में (२००-२२०) बसंत का वर्णन विप्रलंभ शृंगार में किया है—

गयउ सिसिरु वणतिण दहंतु,
महु मास मणोहरु इत्थ पत्तु।
गिरि मलय समीरणु णिरु सरंतु,
मयणग्गि विउयह विप्फुरंतु॥ २००॥

---

२००. शिशिर-ऋतु जाने के पश्चात बसंत-ऋतु का आगमन हुआ और विरह की प्रेमाग्नि को बढ़ाता हुआ मलय समीर बहने लगा।

वाहिज्जइ नव किसलय करेहिं,
महुमास लच्छिएं तरुवरेहिं।
रुण झुण करेहि वणि भमरु छुद्ध,
केवयकलोहि रसगंधलुद्ध ॥ २०५ ॥

× ×

किंसुयइ कसिण घणरत्तवास,
पच्चक्ख पलासइ धुइ पलास।
सवि दुसह हूय पहंजणेण,
संजाणउ असुहु वि सुहंजणेण ॥ २०६ ॥
निवंडल रेणु धरपिंजरीहि,
अहिययर तविय णव मंजरीहि।
मरु सियलु वाइ महि सीतलंतु,
णहु जणइ सीउएं खिवइ ततु ॥ २१० ॥
जसु नामु अलिक्कड कहइ लोउ,
णहु हरइ खणद्धू असीउ सोउ।
कंदप्प दप्पि संतविय अंगि,
साहारइ णाहुण संहार अंगि। २११ ॥

---

२०५. मधुमास में तरुवर नव किशलयों से लद गये और केतकी-कली-गंध लुब्ध भ्रमर वन में गुंजार करने लगे।

२०६. किंशुक पुष्प कृष्ण घन वर्षा सदृश होगये। और पलाश राक्षस सदृश दिखाई देने लगे। मलय पवन असह होगये। शीभांजना (सहजना) दुख देने वाले बन गये।

२१०. नवमंजरियों की केशर ने पृथ्वी पर गिर कर मुझे अधिक दुखी बना दिया शीतल वायु ने पृथ्वी को शीतल कर दिया है परन्तु न जाने क्यों वह मुझको ताप देती है।

२११. लोग अशोक को अशोक झूठा ही कहते हैं किंतु यहाँ अशोक तो क्षणमात्र को भी मेरे शोक को नहीं हरता। कंदर्प के दर्प से

लहि छिट्टु वियंभिउ विरह घोरु,
कर तंडउ मुणिउ रंडत मोरु।
सिहि चडिउ पिक्खि मायंद साहु,
मुणि पंथहि जं मइ पढिय गाहु ॥ २१२ ॥

× ×

अइ मणहरु पत्तु मणोहु रीउ,
उच्चरहिं सरसु महुयर भुणीउ ॥ २१६ ॥

कारंड करहि तह कीर भाइ,
कारुन्न पउक्कउ तह कुणाइ।
अइ ऐरिस मयण परव्वसीउ,
कह कहव धरंती कट्टि जीउ ॥ २१७ ॥

संतापित मुझे सहकार वृक्ष नहीं अपितु मेरे नाथ ही सहायता कर सकते हैं।

२१२. इस अवस्था में दारुण विरह अपनी पूर्णावस्था को पहुँच गया। मैं भौंरों की ध्वनि और नृत्य का अवलोकन करती हूँ। उसको आम्र-वृक्ष पर बैठे देखकर मैंने एक गाथा कही।

२१६. कोयल सुरकटक के वृक्षों पर बैठकर विविध भावों से गारही है ऐसा प्रतीत होता है मानों विभिन्न भाव प्रदर्शन कर रही हो। भोंरा मधुर शब्दों में गुंजार रहे थे। समय अति सुन्दर था।

२१७. तोता और कारडंक मण्डलाकार प्रसन्नता पूर्वक चिल्लाते हुए उड़ रहे थे। कोयल के शब्द को इस समय कौन सुन सकता हे। इस प्रकार के समय में काम-संतप्त स्त्रियां पृथ्वी पर किस प्रकार जीवित रह सकती हैं।

जलरहिय मेह संतविअ काइ,
किन कोयल कजरउ सहण जाइ।
रमणीयण रत्थिहि परिभमंति,
तूरा रवि तिहुयण बहिरयंति ॥ २१८ ॥
चच्चरिहि गेउ झुणि करिवि तालु,
नच्चीयइ अउव्व बसंतकालु।
घण निविड हार परिखिल्लरहि,
रुण झुण रउ मेहलकिंकिणीहि ॥ २१९ ॥

इहाँ से आगे भाषा का झुकाव प्रान्तीय भाषाओं की ओर अधिक दिखाई देता है। ऐसा कह सकते है कि यह अपभ्रंश और हिन्दी के बीच की भाषा है जो अवहट्ट कहलाती थी।

सिरी थूलि भद्द फागु

'जिन पद्म सूरी' द्वारा लिखा गया 'थूलि भद्द फागु' सं० १३५० और १३९९ के मध्य) को इसका उदाहरण कह सकते हैं। इसे पुरानी हिंदी. जूनी राजस्थानी, व जूनी गुजराती भी कह सकते हैं। व्रजभाषा का भी यह पूर्व रूप कहा ही जा सकता है। इसमें फागु का बड़ा सुन्दर वर्णन है।

मधुर मेघ जिमि-जिमि गाजन्ते।
पंच बाण निज कुसुम बाण तिमि-तिमि साजन्ते ॥

---

२१८. जल रहित मेघ देह को दुख दे रहे हैं। कोयल की वाणी किस प्रकार सही जाय। रमणीवृंद रथ वीथियों में भ्रमण कर रही हैं और तुरही का शब्द पृथ्वी, आकाश और पाताल के लोगों को बहिरा बना रहा है।

२१९. बसंत समय चचंरी नृत्य ताल सहित गान करने में व्यतीत होगये। उनसे हार झूलते थे और करधनी शब्द करती थी।

सीतल कोमल सुरभि बाय जिमि-जिमि वायन्ते ।
मान मडफ्फर मानिनौ तिमि-तिमि नाचन्ते ।।

यह फागु उसी प्राचीन परिपाटी से अनरूप है जो संस्कृत और अपभ्रंश के कवियों में पाई जाती है ।

पृथ्वीराज रासो में बसंत-वर्णन

पृथ्वीराज रासों में लिखा है कि एक बार पृथ्वीराज ने 'चंद बरदाई' से पूछा कि होलीके अवसर पर लोग गालियाँ क्यों बकते हैं तो उसने उत्तर दिया कि प्राचीनकाल में ढुंढ़ा नाम्नी एक राक्षसी थी जो छोटे-छोटे बच्चों को पकड़कर खाजाती थी परन्तु गालियों से उसको बड़ी चिढ़ थी । इस लिये जब वह आती थी तब लड़के इकट्ठे होकर गालियाँ बकते थे जिससे वह भाग जाया करती थी । उस समय से अब तक इसी प्रकार होली के अवसर पर लड़के गालियाँ देकर उसे भगाया करते हैं ।[१]

---

१. होली के संबंध में एक पौराणिक कथा और भी प्रसिद्ध है-- कहते हैं कि जब हिरण्यकश्यप का पुत्र प्रहलाद अपने पिता की आज्ञा की अवहेलना करके 'रामनाम' का ही जप करने लगा तो उसने अपनी बहिन ढुंढ़ा को बुला कर उसे जला देने की आज्ञा दी । वह प्रहलाद को गोदी में लेकर बैठी किन्तु नाम संकीर्तन के प्रभाव से ढुंढ़ा जल गई और प्रहलाद बच गया । कहते हैं कि उसी की स्मृति में होली जलाई जाती है तथा बीच में लगने वाली ढाक की लकड़ी जो ढाड़ा कहलाती है उसी ढुंढ़ा का प्रतीक है ।

बीसल देव रासो में बसंत-वर्णन

पृथ्वीराज रासो के पश्चात् नरपति नाल्ह द्वारा रचित

'बीसल देव रासो' का काल आता है जिसका समय तेरहवीं शताब्दी पड़ता है। भाषा अपभ्रंश के पद से च्युत होकर अबहट्ट की ओर आती दिखाई देती है। इसमें कवित्व का दिग्-दर्शन नहीं होता। यदि 'रासो' शब्द का अर्थ गीत ले लिया जाय तो उचित ही प्रतीत होता है क्योंकि इस रासो की भाषा जन साधारण की भाषा है जिसमें कवि ने बीसलदेव का चरित्र वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस चरित्र को गागाकर कवि जन साधारण में सुनाया करता था। जिस प्रकार इस की भाषा सरल है उसी प्रकार बसत वर्णन में भी कोई भाव गाम्भीर्य नहीं है। 'बीसल देव रासो' के अनुसार बीसल देव उड़ीसा जीतने और धन संग्रह करने चला जाता है। उसकी रानी राजमती अपने पति के वियोग में दुखी रहती है जिसका वर्णन कवि ने बारहमासे के रूप में विप्रलंभ शृंगार में दिया है। वसंत का वर्णन उसी के अन्तर्गत किया गया है।

चैत्र मास लगता है परंतु चतुरंगी नारि बिना प्रियतम के किस आधार पर जी सकती है। इस समय उसकी सखियाँ उसके पास आकर बैठ जाती है और कहती हैं—

पंच सखी मिली बइठी छइ आई॥
दंत कवड़या नह रंग्या।
चालउ सखी होली खेलवे जाई॥

यह सुनकर राजमती उत्तर देती है—

सूणजो सहेली कहूँ इक बात।

× ×

म्हां क्यूँ होली खेलवा जाई ?
उलीगाण की गोरणी ।
म्हां की आँगुली देखता गिलजे बाँह ॥

इसी प्रकार बैसाख मास आरंभ होजाता है। गोरी कहती हैं कि धान कटने लगे हैं, पानी में शील आगया है और पान पक गये हैं किंतु मूर्ख पति इस तथ्य को किस प्रकार जान सकता है, वह तो बहुत दूर राज दरबार की सेवा कर रहा है।

मूरख नाह न जाणो सार ॥
हाथि लगायी ताजिणो ।
पारकइ सेवइ राजद्वार ॥

विद्यापति का बसंत–वर्णन

माघ मास में श्री पचमी (बसंत-पंचमी) के आते ही नव युवतियाँ नाचने लगी। माननियों का मान भंग होगया। मलयानिल चलने लगी। विविध पुष्प विविध भांति के बाजे बजाने लगे। ऐसे समय में समस्त जाति की नारियाँ बाल और वृद्धा तक विविध भाँति के शृंगार करने लगी। इसके पश्चात् कवि का वर्णन प्राचीन परम्परा के अनुसार है जिसमें संयोग में सभी वस्तु सुंदर और वियोग में दुखद प्रतीत होती हैं।

'विद्यापति' के वर्णन से एक बात और प्रतीत होती है कि यह बसंत वर्णन उस समय का है जब कृष्ण मथुरा गये थे। राधा उन्हें बसंत की सुधि दिला कर रोकना चाहती है। वह कहती है कि जब तुम वहाँ कोयल की वाणी सुनों तो हमको जलदान कर देना अर्थात् यह समझ लेना कि हमारी मृत्यु होगई। (पं० सं० ६१९) वह मूर्छित हो जाती है। कृष्ण उसे न जाने का आश्वासन देते हैं किंतु वह चले जाते हैं। राधा दुखित होती है। वह कहती है कि जब से माधव मथुरा गये है तब से

गोकुल का माणिक हरण होगया है। उनके बिना 'शून भेल मदिर शून भेल नगरी। शून भेल दश दिश शून भेल सगरी।' इसके पश्चात् राधा का विरह वर्णन है। राधा कहती है—

सरसिज बिनु सर, सर बिनु सरसिज,
की सरसिज बिनु सूरे।
जौवन बिनु तन, तन बिनु जौवन,
की जौवन पिय दूरे।
सखि हे मोर बड़ दैव बिरोधी।
(पं० सं० ६५३)

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर—

साहर मजर भमर गुजर कोकिल पंचम गाव।
दखिन पवन विरह वेदन निठुर कंत न आव॥
साजन रचह सेहे उपाए।

इसकी अंतिम पंक्ति बड़ी सुंदर बन पड़ी है। राधा कहती है कि मधु मास (माधव) तो आया किंतु माधव (कृष्ण) नहीं आये। श्री कृष्ण के आने पर ही यह विरह वेदना जा सकती है।

पद्मावत का वसंत-वर्णन

जायसी ने पद्मावत में वसंत का वर्णन दो स्थलों पर किया है। (१) बसंत खड में (२) नागमती के विरह वर्णन (षट ऋतु) में।

वसंत खंड में श्री पंचमी के आगमन पर सब सखियों सहित कमल-कलिका से मालती पुष्प की भाँति विससित होकर विश्वेश्वर देवता की पूजा करने जाती हैं! यहाँ विविध प्रकार के पुष्प फूल रहे हैं। सखियाँ विविध विलास करती हैं।

इस विलास में लोक जीवन के 'मनोरा झूमक', होली तथा 'घूरेंड़ी' का भी वर्णन किया गया है। इतना ही नहीं इसके साथ ही पंचम स्वर में गाने का तथा ढोल, दुंदुभि, भेरी, मादल, तूर, झाँझ, शृंग, शंख, डफ, बंशी और महुयर वाद्यों का भी उल्लेख किया है। जैसाकि उनके समकालीन सूरदास आदि ब्रजभाषा के कवियों भी किया है, इस वर्णन का हम बसन्तोत्सव से संबंध कर सकते हैं जिसका उल्लेख प्राचीन साहित्य में मिलता है।

नागमती के विरह वर्णन में कवि ने बसंत के दूसरे पक्ष का वर्णन किया है जिसमें उसका उपयोग उद्दीपन के रूप में किया गया है। नायिका आम्र-वृक्षों को बौरे देखकर कहती है कि 'हे सभागे पति, तुम अब भी घर आजाओ।'[1] कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि बसंत बड़ी कठिनता से मिलता है और विरला भाग्यवान पुरुष ही उसका उपभोग कर सकता है। फिर वह उससे परेवा की भाँति ही घर आने की प्रार्थना करती है। इसके पश्चात् वह विरह की ऊष्माका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

भा बैसाख तपति अति लागी। चोआ चीर चंदन भा आगी॥
सुरुज जरत हिवंचल ताका। विरह बजागि सौंह रथ हांका॥

---

१. 'किशोर' ने भी इसी भाँति की भावना व्यक्त की है--

फूलन दै सखि टेसू कदंबन बौरन आंबन छावन दै री।
री मधु मत्त मधुपन पुंछन कुंजन सोर मचावन दै री।
क्यौं सहि हैं सुकमारि 'किसोर' अली कलि कोकिल गावन दै री।
आवत ही बनि है घर कंतहिं बीर बसंतहि आवन दै री।

इस भीषण कामाग्नि का कौन सामना कर सकता है।

इस प्रकार शृंगार का वर्णन जब विरह के वर्णन में आता है तो वही दुखदाई हो जाता है।

नागमती का विरह वर्णन कवि ने किस सुंदरता से किया है—

चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी॥
पंचम बिरह पंच-सर मारै। रकत रोइ सगरौ बन ढारै॥
बूड़ि उठे सब तरिवर-पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता॥
बौरे आम फरै अब लागे। अबहु आउ घर कंत सभागे॥
सहस भाव फूली बनसपती। मधु कर घूमहिं सँवरि मालती॥
मोकँह फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे।
फरि जीबन भए नारँग साखा। सुआ-विरह अब जाइ न राखा।

घिरिनि परेवा होइ, पिउ! आउ बेगि, परि टूटि।
नारि पराये हाथ है, तोहि बिनु पाव न घूटि॥

भा बैसाख तपनि अति अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी॥
सुरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौंह रथ हाँका॥
जरत बजागिनि करु पिउ! छाँहा। आइ बुझाउ, अँगारन्ह माँहा॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें करु फुलवारी॥
लागिउँ जरै, जरै जस ताहन। फिरि फिरि भूजेसि, तजिउ न वाहन॥
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइँ कै बिहराई॥
बिहरत हिया करहु पिय! टेका। दीठि-दिव्वंगरा मेरवहु एका॥

कवँल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ।
अबहु बेलि फिरि पलुहै, जो पिय सीचै आइ।

(पदमावत, नागमती वियोग खंड)

समकालीन भक्त कवियों द्वारा बसंत-वर्णन

सूर के समकालीन कृष्ण-भक्ति सगुणोपसना के भक्त कवियों के वर्णन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं एक 'अष्ट-छाप' के कवि जिनमें कृष्ण कीप्रधानता है। दूसरे वे जो राधा-कृष्ण की कमनीय केलि के उपासक है। जहां अष्ट-सखा प्रभृति कवियों का वर्णन है वहाँ तक उन्होंने जन-जीवन से संबंधित होली का कुछ वर्णन किया है परंतु वह उसको उतने विस्तार से नही कह सके जितना कि 'सूरदास' ने किया है। दूसरा वर्णन राधा-कृष्ण के निकुंज केलि का होली वर्णन है। यहाँ उस होली में उनकी सहचरि, सखी आदि का ही प्रवेश है और उसमें दर्शक भी संभवतः उसी श्रेणी के भक्त हैं जो अपनी अंतर्दृष्टि से मानसी सेवा द्वारा भगवान की उन केलि कलाओं को देख सकते हैं। श्री 'हित हरिवंश' ने बसंत-ऋतु में होली का जो वर्णन किया है वह 'हित-चतुरासी' यहां दे रहे हैं—

प्रथम समाज आज वृंदावन विहरत लाल बिहारी।
पाँचें नवल बसंत वृंदावन उमँगि चली ब्रजनारी।
मंगल कलस लिऐं ब्रज सुंदरि मधि वृषभानु दुलारी।
फल दल जुर नव तूत मंजरी कनक कलस सोभा भारी।
गावत गीत बजावत बाजे मैंन-सैन अनुहारी।
दरस परम मन मोद बढ़ावत राजत छबि भर भारी।
उड़त गुलाल कुंकुमा भरि भरि अरु केसरि पिचकारी।
छिरकत फिरत छबीले गातन रूप अनूप अपारी।
बिविध बिलास हास रस भीने इत प्रीतम उत प्यारी।
'हित हरिवंस' निरखि मुख सोभा अखियाँ टरत न टारी॥

मधुरितु वृंदावन आनन्द न थोर। राजत नागरी नव किसोर।
जूथिका जुग रूप मंजरी रसाल। बिथकित अलि मनु लाल गुलाल।
चंपक बकुल कुल विधि सरोज। केतकी मेदनी मुदित मनोज।
रोचक रुचिर बहे त्रिबिध समीर। सुकलित निर्तत आनंदित कीर।
पावन पुलिन घन मंजुल निकुंज। किसलय सैंन रचित सुख पुंज।
मंजीर मुरज डफ मुरली मृदंग। बाजत मधुर बीना मुखचंग।
मृगमद मलयज कुंकुम अबीर। चंदन अगर मौं रचित चीर।
गाबत सुंदर हरि सरस धमारि। पुलकित खग-मृग बहतक निवारि।
'हित हरिवंस' हंस-हंसनी समाज। ऐसेंहि करौ मिलि जुग-जुग राज।

वृंदावन के राधा-बल्लभवीय सम्प्रदाय के शिष्य श्री 'हरीराम व्यास' ने होली का वर्णन करते हुए इस ओर संकेत किया है कि होली में आचार की सीमा नष्ट हो जाती है।

खेलत बसंत कंत कामिनी मिलि हो हो बोलत डोलत फूले।
सुख सागर गावत दोउ नाचत नट नागर बंशीवट मूले।
मौरे आमनि कोकिल कूजत फूल भूमकनि अलि कुल भूले।
बिबिध रंग छिरकत छबि अंगन भूषन भूषित चित्र दुकूले।
परनारी पर नाह बाहु गहि बिगत लाज जोबन मद भूले।
'व्यास' स्वामिनी संग हरि बिहरति बिलपति पथिक बधू जन सूले।

इसमें स्पष्ट ही लिखा है 'परनारी·····जोबन मद भूले।' इस बात की ओर संकेत करते हैं कि इस प्रकार यौवनावस्था में मनुष्य सब ही कुछ भूलकर परनारी, पर पुरुष की बाँह पकड़ लेती है। इससे तो यही भाव निकलता है कि वह इस प्रकार के कार्य अच्छा न समझते थे।

इसी प्रकार का वर्णन 'केलिमाल' में स्वामी हरिदास ने भी किया है।

इसके अतिरिक्त राम भक्ति शाखा के भक्त कवियों ने भी बसंत और होली का वर्णन किया है परंतु वे इसमें पूर्ण सफल न हो सके। इसका कारण है पात्र भेद और उत्सव का उद्देश। इसके लिये सगुण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि 'तुलसीदास' को लेकर इसकी विवेचना करने की चेष्टा करेंगे।

तुलसी का बसंत

तुलसी के राम एक आदर्शवादी अवतार हैं। उनको दृष्टि में राजा और प्रजा में भेद है, वह उसमें पूर्ण रूप से नहीं घुल मिल सके। फिर जिन उद्दात भावनाओं का प्रदर्शन इस उत्सव के समय होता है वह भी राम-चरित्र के प्रतिकूल हैं। कृष्ण एक नंद के यहाँ उत्पन्न हुए हैं वह सभी लोगों में घुलमिल जाते हैं और वह उनके प्रत्येक अनुष्ठान और उत्सवों में सम्मिलित होते और उसका आनन्द लेते हैं। इसीलिये तुलसीदास ने अपने किसी ग्रंथ में भी होली का वर्णन केवल गीतावली में किया है। परंतु उसमें भी वे सफल नहीं हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार बाल-लीलाओं के पदों को देखकर तुलसीदास को बाल-क्रीणाओं के लिखने को प्रेरणा मिली, उसी प्रकार उनकी इसी प्रकार होली लिखने की इच्छा हुई होगी परंतु आदर्श के कारण वे उसमें पूर्ण सफल न हो सके।

'गीतावली' में तुलसीदास ने बसंत का वर्णन दो स्थानों पर किया है। एक चित्रकूट में तथा दूसरा रामराज्य वर्णन में। दोनों में ही बसंत के अंतर्गत होली का वर्णन किया गया है।

'वनवास काल' में राम सीता और लक्ष्मण सहित चित्रकूट पर्वत पर तापस वेष बनाकर रहते हैं। उसी समय बसंत का आगमन होता है। विविध भाँति के पुष्पों को मुकलित देखकर लक्ष्मण राम से कहते हैं—

लषन कहेउ रघुनंदन, देखिय विपिन समाज।
मनहु चयन मयनपुर, आयउ प्रिय ऋतुराज॥
चित्रकूट पर राऊर, जानि अधिक अनुराग।
सखा सहित जनु ऋतुपति, आयउ खेलन फाग।

इसके पश्चात् प्रकृति में होलिकोत्सव के रूप का आरोप कर बसंत का मानवीकरण किया गया है और प्रभु जब काम-कौतुकी की क्रीणाओं से प्रसन्न होते हैं तब उसे वे जग-विजयी होने का वरदान देते हुए अपने भक्तों को दुख न देने का आदेश देते हैं जिसे वह 'भलेहु नाथ' कहकर आज्ञा शिरोधाय करता है।

एक दूसरे पद में—

आजु बन्यौ है विपिन देखौ रामधीर।
मनु खेलत फागु मुद मदन बीर॥

तथा—

ऋतुपति आये भलौ बनौ समाज।
मनौ भए हैं मदन महाराज आज॥

इसमें भी रूपक में ऋतुराज का वर्णन किया गया है। यह वर्णन केवल ऋतु-सौंदर्य के दृष्टिकोण से ही किया गया प्रतीत होता है क्योंकि चित्रकूट जैसे स्थान में जहाँ तपस्वी का वेश बनाकर राम और लक्ष्मण रहते थे, वहाँ काम का प्रवेश उचित दिखाई नहीं देता। इस स्थल पर बसंत का वर्णन इस

रूप में होना चाहिये था जिससे वह उनकी स्थिति के अनुरूप हो किंतु तुलसीदास का दृष्टिकोण दूसरा प्रतीत होता है। राम राजा हैं और सब उनके अनुचर हैं। चित्रकूट का निवास स्थान चाहे उनके तापस वेषमें ही हो किंतु उनके सामने आये हुए कलावंतों को कुछ न कुछ पारितोषिक देना अवश्य ही उचित है। तब राम उसको क्या दें, उसे 'जग विजयी' का वर देते हैं। किंतु पूर्वोक्त तीनों पदों में कवि को इस बात की विशेष चिंता है कि यह जगत्-विजयी कहीं राम के भक्तों पर ही अपना शर-संधान न कर दे। अतः वह रामजी द्वारा आज्ञा दिला देते हैं कि तुम उनके भक्तों को नहीं सताना किंतु पौराणिक कथाएं इस बात की साक्षी हैं कि काम का प्रहार सबसे अधिक इन्हीं पर होता रहा है।

दूसरे स्थल पर रामराज्य के पश्चात् सभी पुरजन होली पर राम-दरबार में उपस्थित होते हैं। उन्हें देखकर रामजी आज्ञा देते हैं कि तुम सब मिलकर खेलो और सब लोग होली खेलने लगते हैं। इसी पदके अंत में कहा गया है।

खेलत फागु अवधपति, अनुज सखा सब संग।

इससे इस खेल के दो भाग हो जाते हैं एक में पुरजन खेलते हैं तो दूसरे में निज जन की होली होती है। इस प्रकार पुरजन और निज जन के बीच एक पृथक् रेखा दिखाई पड़ती हैं। हो भी क्यों नहीं, राम का रूप तो मर्यादा पुरुषोत्तम का है। वह राजा हैं। इसी राजतत्व की मर्यादा के कारण ही तो उन्होंने आगे सीता का परित्याग किया था।

होलिकोत्सव वास्तव में इस मर्यादा से बँधा हुआ नहीं है। वह तो जन-जन का उत्सव है, उसमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है।

'सभी भए इक सार अहो हरी होरी है' इसका मूल मंत्र हैं। इसलिये 'तुलसी' का वर्णन 'सूर' के समक्ष नहीं पहुँच पाता जहां कोई किसी से छोटा बड़ा नहीं, सभी समान हैं। यह बात दूसरी है कि किसी के चार गाय अधिक हैं अथवा कम हैं। स्वतः तुलसी भी इस चाँचरि के अधिक पक्ष में प्रतीत नहीं होते क्योंकि उन्होंने स्वतः एक स्थल पर कहा है—

'तुलसीदास' चाँचरि मिसहि कहे राम गुन गाय।

इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास का अभीष्ट चाँचरि का वर्णन नहीं, रामगुन गाना ही है। इसकी तुलना उन रीत कालीन कवियों से की जा सकती है जो कहते हैं—

आजु के सुकवि रीझिहैं तो कविताई,
नातो राधा-कृष्न सुमरन को बहानो है।

सूर का बसंत-वर्णन

रचनात्मक विकास—

कालिदास ने जहां पद्य-साहित्य को अपनाया वहाँ छंद शास्त्र की दृष्टि ऐसे छँद मिलते हैं जिन में अनेक 'गणों' का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार छंद में जहाँ वर्णवृत्त में चारों पदोंमें एक सी वर्ण संख्या मिलती है वहाँ उनकी मात्राए भी एक ही समान हो जाती है जो संस्कृत के अनुरूप ही है क्योंकि उसमें जहाँ गहनतम भावों के प्रकास करने की क्षमता है, वहां उसके पास एक बहुत बड़ा शब्द भंडार है, शब्दों के निर्माण की क्षमता है और उसके पीछे की अपनी एक परंपरा है, किंतु लोक भाषा जब पूर्व प्राकृत का साथ छोड़कर उत्तर प्राकृत का रूप धारण करती हुई अपभ्रंश के मैदान में आई तो उसे संस्कृत का मार्ग छोड़कर कुछ नये छन्दों को लेना

पड़ा जो उनके भावों का भार वहन कर सकें, किंतु चूँकि उनके पीछे शब्दों के नव निर्माण की क्षमता नहीं थी, इसलिये उसे उन छंदों को छोड़ना पड़ा जो संस्कृत काव्य में व्यवहार में आते थे। और उसमें प्रायः मात्रिक छंदों में (वर्ण और गण वृतों में कम) रचना होने लगी। स्वयंभू तथा अब्दुरहमान की कविताएँ इस बात की साक्षी है कि दोनों का वर्णन ही 'चौपाई' छन्दों में है। दूसरी ओर गायन परंपरा में 'अष्टपदी' का गायन आरंभ होता है जो पद-साहित्य की एक शृंखला है। 'गीत गोविंद' में संस्कृत साहित्य में वर्ण-वृतों को लेकर तथा गायन के पद साहित्य का रूप परिष्कार करके अष्टपदी के रूप दिखाई पड़ता है। इस प्रकार हमें इस समय तक दो बातें मिलती हैं। अपभ्रंश में चौपाई तथा गायन में 'अष्टपदी'। इन दोनों का समन्वय हमें 'विद्यापति' में दिखाई पड़ता है जहाँ चौपाई और अष्टपदी के पदों के स्वरूप का यों का त्यों रूप कुछ पदों में दिखाई पड़ता है। यह बात दूसरी है कि उसमें आठ के स्थान पर पाद कुछ कम रह जाते हैं।

'सूर' की रूप रेखा कुछ इसी प्रकार की है। इसमें बसंत-वर्णन में कुछ चौपाई जैसे छंद हैं। चौपाई जैसे हम इसलिये कह रहे हैं कि उनमें सभी में सोलह मात्राएँ नहीं हैं, कहीं पंद्रह है तो कहीं सत्तरह हैं किंतु गायन से समय गान-विद्यानुसार सभी सोलह मात्राओं की ताल में ठीक बैठा ली जाती हैं। पदों के संबंध में इतना कहा जा सकता है कि जहाँ तक बसंत का संबंध है उसमें 'विद्यापति' के कुछ पदों का अनुसरण है जो अवहट्ट में आये हुए पदों की शृँखला है। होली के पदों में जिन्हें धमार कहा जाता है इन पदों की संख्या आठ से नहीं अधिक आयी है। यह धमार अपने में पूर्ण एक होली का वर्णन है।

भावात्मक विकास

हम ऊपर बता आये हैं कि किस प्रकार प्राचीन बंसतोत्सव में बसंत, होली, दोलोत्सव और वन-यात्रा भिन्न रूप में अभी तक यहाँ प्रचलित है तथा यह भी हम कह आये हैं कि यहाँ वन-विहार भी मदनोत्सव का ही एक अंग है। मदनोत्सव के सबध में यह भी लिखा जा चुका है कि इसमें रात्रि के समय नाच-रंग इत्यादि होते थे जो वन-विहार में होते हैं। अंतर केवल इतना ही है कि जहां मदनोत्सव चैत्र शुक्ला १२ से १४ तक चलता था, वहाँ वन-विहार वैसार्खा पूर्णिमा को मनाया जाता है।

'सूरदास' ने अपने काव्य सें इन्हीं लोक-तत्वों का प्रवेश करके उन्हें अपने इष्ट के अर्पण किया है। वह ब्रज में उत्पन्न हुए, यहाँ की रज से अन्य ब्रजवासियों की भाँति ही उनकी लौकिक देह ने वृद्धि प्राप्त की, फिर वह उनके और वे उनके थे।

ब्रज की फागु प्रसिद्ध है। फागु शब्द की व्युतपत्ति फल्गु शब्द से है जिसका अर्थ कामदेव है। इस प्रकार फागोत्सव और मदनोत्सव एक ही वस्तु बन जाते है। फाल्गुन नामक महीना में फागुका संबंध फागुन से जुड़ जाता है और वह चैत्र-बैसाख बसंत से संबंध त्याग फागुन से संबंध जोड़ लेता है।

'सूर' का बसंत वर्णन उस प्राचीन परिपाटी के अनुरूप है जिस 'जयदेव' और 'विद्यापति' से बल मिला है। उसके प्रथम पद से ऐसा विदित होता है कि सूरदास ने नित्य धाम वृंदावन की लीला का वर्णन किया है किंतु आगे के पदों से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि 'सूरदास' द्वारा वर्णित लीला, नित्य की लीला नहीं अपितु ब्रज के बसंत का ही वर्णन है जिसे सखी जी इस उक्ति से जाना जाता है—

राधे जु आरज वरनौं बसंत ।
मनहु मदन-विनोद बिहरत नागरी नव कंत ।

इस लीला को नित्य-लीला न कह कर हम प्रकट लीला कह सकते हैं। कवि ने बसंत का आगमन 'कालिदास' के योद्धा की भाँति अथवा 'विद्यापति' के बालक-जन्म सदृश नहीं, एक राजा के आगमन के रूप में वर्णन किया है जो आते ही माननियों को आज्ञा-पत्र भेजकर मान छोड़ने की आज्ञा देता है।

ऐसौ पत्र पठायो नृप बसंत ।
तुम तजहु मान मानिनी तुरंत ।।

किंतु राधाजी माननी नहीं, वह अपनी सखी के इतना कहने पर ही कि श्री कृष्ण पर मदन की सेना ने आक्रमण किया है तुम शीघ्र ही चल कर उनकी सहायता करो, वह चल देती हैं।

बेगि चलो, बन कुँवरि समानी ।
समै बसंत विपिन मधि हय-गज, मदन सुभट नृप-छौज पलानीं ।

× ×

सूरदास प्रभु की वेई गति, करहु सहाय राधिका रानी ।

इतना ही नहीं वह निकुंजों में पहुँच कर श्री कृष्ण से कहती हैं कि यह मदन तुम पर चढ़ाई करने नहीं अपितु तुम्हारी हाजिरी देने आया है।

देखौ वृंदावन कमल नैन ।
मनु आयौ मदन गुन गुदरि दैन ।।

इसके पश्चात् बसंत-विलास आरंभ होता है। नवीन-

नवीन वस्त्रों को धारणकर नवीन पुष्पों की माला गूँथ गोपियाँ श्री कृष्ण को पहिराती है।

'अपने कर सुंदरि रचित माल।
पहिरावत नागरि नंदलाल।'

और केशर और अरगजा घोल कर राधिका श्री कृष्ण पर डाल देती हैं।

नव केसर नव अरगजा घोरि।
छिरकत नागर कैं नव किसोरि।

और फिर अंत में प्रथम बसंत-पंचमी की पूजा का उल्लेख है जिसमें अबीर, गुलाल, अरगजा, चोवा आदि का वर्णन है। यह वर्णन यद्यपि कवि ने स्थान-स्थान पर उत्प्रेक्षा देकर किया है किंतु जिन्होंने व्रज के मंदिरों के बसंत-पंचमी के दर्शन किये हैं वे सहज ही में समझ जा सकते हैं कि उक्त वर्णन 'सूर' ने अपनी प्रज्ञा-चक्षुओं द्वारा ही लीला रूप में देखकर वर्णन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'सूरदास' के समय तक हमें 'बसंत' पर एक शृंखला मिलती है। इस शृंखला में हमें कई बातें रूढ़िगत् दिखाई पड़ती हैं जिनका उल्लेख अथर्ववेद काल में ही मिलने लगता है। उस परम्परा की मुख्य बात बसंत का मानवी करण है। जिसका विकास पौराणिक कथाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। किंतु काव्य में उसका उल्लेख जहाँ पौराणिक परंपरा अनुसार मिलता है वहाँ उसका दूसरा रूप भी मिलता है जिसमें प्रकृति को मानव रूप देकर विविध कबियों ने अपनी-अपनी रुचि के अनुसार उसके अनेक रूपों की कल्पना की है। 'कालीदास' ने बसंत का

आगमन एक योद्धा के रूप में किया है, जिसका आगमन होते ही प्रकृति में नव चेतना का उदय हो जाता है। 'विद्यापति' उसको ही एक बालक-बसंत के रूप में सिरी-पंचमी से उत्पन्न मानते हैं। 'सूरदास' उसी को एक राजा के रूप में प्रकट कर अपना आज्ञा-पत्र माननियों के लिये प्रेषित करते हैं। रीति कालीन साहित्य में भी इस प्रकार के विभिन्न रूपक अनेक कवियों ने रचे हैं जिसमें उन्होंने उनका विविध रूप अपनी-अपनी मनोवृति के अनुसार रूपक में बाँधा है।

बसंत का दूसरा रूप जो हमारे सामने आता है वह शृंगार रस के उद्दीपन के रूप में है। शृंगार का संबंध काम से है। बसंत काम का सहचर है। कामदेव की सहायता करने को ही उसका जन्म हुआ है। सखा,सखी, दूत, दूती, वन, उपवन आदि उनकी क्रीड़ास्थली हैं। इसका वर्णन संयोग और विप्रलंभ दोनों ही पक्षों में कवियों ने किया है। मान तो इसका शत्रु है तभीतो उसने आते ही एक मुनादी फिरवादी कि 'तुम तजहु मान माननि तुरंत'। किंतु मान तो प्रेम बढ़ने का एक साधन माना गया है। 'गीता गोविंद' कार 'जयदेव' और 'विद्यापति' ने इस मान का खूब सहारा लिया है। 'सूरदास' ने इसमें भी अपनी पृथक् पद्धति अपनाई है। सखी बसंत-ऋतु के आगमन में मान छोड़कर निकुंज-विलास की शिक्षा देती हैं और इस प्रकार फागु बसंत की भूमिका बन जाता है।

इस वर्णन में कवि ने अनेक शब्द-चित्र अंकित किये हैं। इन शब्द-चित्रों में प्रायः नँदगाँव, बरसाने और साँकरी खोरि का वर्णन है। ब्रजकी यह होली 'सूरदास' के पूर्वकी प्रतीत होती हैं और ब्रज की अपनी वस्तु दिखाई देती है। इसका मुख्य कारण यह है कि होली का यह स्वरूप ब्रज के बाहर

कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता और न इस प्रकार का वर्णन प्राचीन साहित्य में ही मिलता है, यहाँ तक कि बल्लभकुल सम्प्रदाय के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदायों में लठामार होली का उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण स्वरूप-भावना-भेद भी हो सकता है। 'सूरदास' का यह वर्णन उन्हीं स्थानों से लिया गया है। उन्होंने राधा-कृष्ण का वर्णन किया और फिर उसे लोक-मानस में भर दिया जिससे वह जन-जन की वस्तु बन गया। 'सूरदास' ने होली का वर्णन इस प्रकार किया है—

गोपियाँ यशोदा की आज्ञा पाकर कृष्ण को होली के लिये ललकारती हैं। गोप और ग्वाल अनेक बाजे बजाते हुए कृष्ण के साथ वृषभानु की पौर पर आते हैं। वहाँ दोनों दलों में घमसान होली होती है। रंग रंगीली होली से तबियत नहीं भरती, फिर लठामार होली आरंभ होती है। इसी बीच में गोपियाँ कभी कृष्ण को पकड़ पाती है तो वह कभी छूट कर भाग जाते हैं। गोपियों द्वारा कृष्ण को पकड़ने का उद्देश है उनकी 'आँख आँजना' (तथा उसे नारी रूप धारण कराना)। आँख आँजने का तात्पर्य यह है कि गोपियाँ कृष्ण को पकड़ कर यदि उनकी एक आंख में काजल लगादें तो उनकी जीत होजाती है और स्त्रियों द्वारा पकड़े जानेके कारण वह (कृष्ण) अपनी टोली में हास्यास्पद बन जाते हैं। इसमें कहीं कहीं गोपियों ने छद्म का भी सहारा लिया है। वे बलभद्र के स्वर में कृष्ण को सहायता के लिये पुकारती है और जब कृष्ण आते हैं तो वे पकड़ जाते हैं तथा उनकी आँख आँजदी जाती है। दो एक पदों से यह भी प्रतीत होता है कि यदि हुरियार 'फगुवा' देने का वचन देता है तो उसे छोड़ दिया जाता होगा। आज भी ब्रज में यह हुरियारे दर्शकों की टेंट से

फगुआ के नाम पर कुछ न कुछ निकलवा लेते हैं और लोग खुशी-खुशी देते हैं। यही लीला नंदकी पौर नंदगांव में होती है और फिर चौपइयों के रूप में गैल-गैल में इसका पुनरावर्तन होता हैं जिसमें साँकरी खोरि का उल्लेख आता है। यह सांकरी खोरि बरसाने में गहवर वन के ऊपर है। आजकल सांकरी खोरि में होली नहीं, बरसाने की रंग-रंगीली गली में होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास के काल में सम्भवतः होली सांकरी खोरि में होती होगी। पीछे मंदिर के समीप होने तथा गाँव में प्रदर्शन होने के कारण वह स्थान परिवर्तन करके वर्तमान 'रंग रंगीली गली' में होली होने लगी।

सूरदास का गोकुल कहाँ ?

होली के इन वर्णनों वृषभानु की पौर और गोकुल का वर्णन आता है। वृषभानु की पौर से सीधा तात्पर्य बरसाने से है तथा गोकुल से तात्पर्य उस स्थान से है जहाँ नंद-यशोदा विराजते थे। 'सूरदास' ने अपने काव्य में ब्रज के जिन स्थानों का नाम लिया है उनमें मथुरा, वृंदावन, गोकुल और बरसाना है जो राधा-कृष्ण से संबंधित हैं, परंतु वर्तमान काल में राधा-कृष्ण से संबधित जिन स्थानों की चर्चा की जाती है, उनमें उपर्युक्त चार नामों के अतिरिक्त नँदगाँव और रावल और आते हैं। इस प्रकार मथुरा, गोकुल और नँदगाँव कृष्ण से तथा वृंदाबन, रावल और बरसाना राधा से संबधित है। इसमें बर्तमान गोकुल की स्थापना तो श्री गुसाई बिट्ठलनाथजी ने की थी तथा रावल भी अधिक प्राचीन स्थान नहीं है। वर्तमान महावन जन श्रुति के अनुसार पुरानी गोकुल है।

स्कंध पुराण (वैष्णव खंड ६) के नुसार श्री कृष्ण के प्रपौत्र बज्रनाभ ने जब मथुरा में आकर राज्य आरंभ किया तो

उस समय मथुरा में चारों ओर जंगल ही जंगल होगये थे। उन्होंने राजा परीक्षित की आज्ञानुसार उन स्थानों को फिर से बसाया जहाँ कृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था में बालक्रीड़ाऐं की थी इन्हीं में नंदिग्राम (नंदगाँव) और वृहतसानु (बरसाना) का नाम आजाता है।

वृहद्नारदीय पुराण (उत्तरार्द्ध ८०वां अध्याय) के अनुसार जब नारदजी ब्रज को पधारे तो गिरि गोवर्धन के निकट उनका वृंदा देवी से साक्षात् हुआ तो उन्होंने भगवान की निकुंज-लीला देखने की इच्छा प्रकट की किन्तु वहाँ पुरुषका प्रवेष नहीं होता। अतः अपनी सखी द्वारा कुसुम सरोवर में स्नान कराकर नारी रूप से 'नारदी' सखी के नाम से भगवान की केलि में सम्मिलित किया था। फिर उन्होंने उसे नारद-सरोवर पर रहने को स्थान दिया। यही वृंदा देवी का स्थान वृंदावन वताया गया है।

भगवान कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करते हुए सूरदास के मस्तिष्क में किस गोकुल की कल्पना थी यह तो एक पृथक् विचारणीय विषय है किंतु यह बात निश्चित है कि फागु वर्णन में जिस गोकुल का उल्लेख है वह वर्तमान गोकुल अथवा महावन नहीं हो सकते क्योंकि होली में वर्णन करते समय जिस लठामार होली का वर्णन किया है वह वर्तमान गोकुल अथवा महाबन में कहीं भी नहीं होती अपितु नँदगांव और बरसाने में वह अब भी उसी रूप में होती है जैसा कि 'सूरदास'ने वर्णन किया है। उसकी परिपाटी भी वही है जिसका कुछ परिमार्जित रूप सूर ने वर्णन किया है। नंदगाँववालों को होली का निमंत्रण पांडे के नाचने से नहीं अपितु बरसाने की गोपियों द्वारा दिया जाता है। बरसाने में पहिले

होली होती है फिर बरसानेवाले अथवा राधाप्यारी के उपासक नंदगांव में जाकर लठामार होली खेलते हैं। अतः इनका संबंध नंदगांव से होना चाहिये। जिसके लिये उन्होंने गोकुल शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने इस गोकुल की स्थिति इस प्रकार बतलाई है–

'ऊँचो सो गोकुल नगर जहँ खेलत होरी।'

इसमें जहाँ 'ऊँचा' शब्द श्रेष्ठ अर्थ में हो सकता है वहाँ उसका अर्थ उच्च स्थान पर बसा हुआ भी होता है। नंदगाँव एक उच्च टीले पर बसा हुआ गांव है और वहीं बरसानेवाले ऊपर जाकर होली खेलते हैं। यह स्कंध पुराण के अनुसार ब्रज की रक्षार्थ बज्रनाभ द्वारा बनाया गया एक दुर्ग है। अतः दुर्ग का ऊँचे स्थान पर बसा होना आश्चर्य जनक नहीं। अतः सूरदास की दृष्टि से वर्तमान नदगाँव ही गोकुल है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सूर का बसंत वर्णन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। बसत वर्णन का जहाँ तक संबंध है वह पूर्णतः संस्कृत और विद्यापति आदि कवियों से प्रभावित है किंतु उसमें भी मौलिकता की अपनी छाप है। वह उसमें विरह का वर्णन नहीं करते। यह कहना अधिक उचित होगा कि यह बसंत वर्णन बसंतोत्सव की पृष्ठभूमिके लिये प्रयोग किया गया है। होली में वे पूर्ण मौलिक है उस पर किसी का भी प्रभाव दिखाई नहीं देता वह उन्होंने नंदगांव और बरसाने की होली का सांग वर्णन किया है। यह कहना अधिक उचित होगा कि सूरदास ने बसंतोत्सब के प्रत्येक उत्सव को जैसा उन्होंने ब्रज में देखा अपने काव्य में बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया है। इतना ही नहीं सूरदास के पारवर्ती कवियों ने

भी सूरदास की अनेक युक्तियों को अपनाया है—यहाँ हम यही बात को दिखाने की चेष्टा करेंगे।

सूर पर विद्यापति का प्रभाव

सूर का अन्य सभी कवियों की भांति वसंत वर्णन ऋतु-राज के आगमन से ही होता है। सूर और विद्यापति का वर्णन इस संबंध में अति निकट है। विद्यापति कहता है (प.सं०६०५)

आएल ऋतुपति राज बसंत। धाओल अलिकुल माधवि पन्थ॥
दिनकर किरण भेल पय गण्ड। केशर कुसुम धयल हेमदण्ड॥
नृप आसन नव पीठल पात। कंचन कुसुम छत्र धर माथ॥
मौलि रसाल मुकुल भेल ताय। समुखहि कोकिल पञ्चम गाय॥
शिखिकुल नाचत अलि कुल जंत्र। आन द्विज कुल पड़ आशीष मंत्र॥
चन्द्रातप उड़े कुसुम पराग। मलय पवन रह भेल अनुराग॥
कुंदकलीं तरु धरल निशान। पाटल तृण अशोक दल बान॥
किंशुक लवङ्गलता एक संग। हेरि शिशिर ऋतु आगे देख भंग॥
सैन्य सजिल मधुमक्षिक कुल। शिशिरक सबहु कयल निरमूल॥
उधारण सरसिज पाओल प्राण। निज नव दले करु आसन दान॥
नव वृंदावन राज्ये विहार। विद्यापति कह समयक सार॥

इस प्रकार नव वृंदावन में बसंत महाराज ने जब राज्य स्थापित किया, तब उनका प्रथम आज्ञा पत्र क्या था, इस संबंध-में मैथिल कोकिल ने कुछ नहीं लिखा। सूरदास ने ऋतु-राज बसंत का राजा के रूप में कोई पद लिखा कि नहीं, हम नहीं कह सकते (संभव है कभी खोज में सूर का इस प्रकार का रूपक मिल जावे) किंतु उन्होंने राज्यारोहण करते ही जो आज्ञापत्र प्रचारित किया, वह किस प्रकार लिखा गया तथा उसको किस किस ने मुनादी के ढंग पर पढकर सुनाया इसका उल्लेख सूरदास ने एक सुन्दर रूपक में किया है—

ऐसौ पत्र पठायौ नृप बसंत। तुम तजहु मान मानिनि तुरंत॥
कागद नव दल अंबु पात। द्वात कमल मसि भंवर गात।
लेखनी काम बान के चाप। लिपि अनंग ससि दीन्ही छाप।
मलयानल चर पठयौ बिचारि। बाँचत सुक पिक तुम सुनहु नारि।
सूरदास क्यों होय आन। भजि हरि गोपी तजि सयान॥

इस प्रकार जब वृंदावन में नवीन राज्य आया तो उसने सभी ओर नवीनता भरदी और वह प्रत्येक वस्तु में दिखाई देने लगी। कवि कहता है—(पं० सं० ६०३)

नव वृंदावन नव नव तरुगण नव नव विकसित फुल।
नवल वसंत नवल मलयानिल मातल नव अलिकुल।
विहरइ नवल किशोर।
कलिन्दी पुलिन कुंज वन शोभन नव नव प्रेम विभोर।
नवल रसाल मुकुल मधु मोति नव कोकिल कुल गाय।
नव युवतीगण चित उमतायइ नव रसे कानने धाय।
नव युवराज नवल नव नागरी मिलये नव नव भाँति।
निति निति ऐसन नव नव खेलन विद्यापति मति माति॥

सूरदास ने इसी नवीनता का दूसरी प्रकार से वर्णन किया है किंतु जहाँ उस पर विद्यापति की छाया स्पष्ट है वहाँ उनकी मौलिकता भी अपना नवीन रंग भर रही है—(देखो)

वृंदाबन खेलत श्री गुपाल। सब बनि-बनि आईं ब्रज की बाल॥
नव बल्ली सुंदर नव तमाल। नव कमल महानव-नव रसाल॥
अपने कर सुंदरि रचित माल। अवलंबित नागर नंदलाल॥
नव केसर नव नव अरगजा घोरि। छिरकत नागर कै नव किसोरि॥
नव गोपबधू राजहिं संग। गज मोतिनि सुंदर ललित संग॥

गोपी-ग्वाल सुंदर सुदेस। छिरकत सुगंध भए ललित भेस॥
श्री नँद नंदन कैं भ्रुव विलास। आनंदित गावत सूरदास॥

दोनों पदों में स्पष्ट ही एक की छाया दूसरे पर दिखाई पड़ रहीं है किंतु एक का सबध बसंत से तथा दूसरे का होली से है। इसमें 'अपने····· नंदलाल' वाली युक्ति उनकी मौलिक है जिसमें नयिकाराब्ध संयोग शृंगार की भावना यथेष्ट रूप से दिखाई पड़ रही है।

इसी प्रकार एक पद (पं० सं० ६२०) में राधा कहती है–

परदेस गमन जनु करहु कन्त। पुनमत पावए ऋतु बसंत।

इस पद में राधा का बसंत में जाने का निषेध अति स्पष्ट है। सूरदासकी गोपियाँ भी होलीको छोड़कर मथुरा न जाने की आग्रह करती हैं किंतु सूर की गोपी जब कृष्ण की विदेश यात्रा का निषेध करती हैं तो उनमें सहज धीर-भाव रहता है वे कहती हैं–

परब करौ घर आपने, हरि होरी है।
कुसल छेम निरबाहु अहो हरि होरी है। (पं० सं० ३५३२)

इसी प्रकार इसके आगे के पद में––

कछु दिन ब्रज औरो रहौ हरि होरी है।

इन दोनों भावनाओं में कहने का ढंग चाहे कुछ भी हो किंतु यह निश्चित है कि उसकी पृष्ठ भूमि विद्यापति की पृष्ठ भूमि है, जो सूर में प्रस्फुटित हुई दिखाई पड़ती है।

परवर्ती कवियों पर प्रभाव

सूरदासने एक पदमें लीला हाव का वर्णन किया है जिसमें

उन्होंने राधा को कृष्ण और कृष्ण को राधा का रूप धारण करा कर यशोदा जी के सन्मुख प्रस्तुत किया है—

राग होली

स्यामा स्याम सौं आजु वृंदावन खेलति फाग नई।
नंद-नंदन को राधे कीन्ही माधव आप भई।
सखा सखी ह्वै सखी सखा ह्वै जुरि नँद भवन गईं।
उनके रूप देखि जसुमति की गति मति भूल गई।
गौरे स्याम साँवरी स्यामा दोउ मूरति चितई।
सूर स्याम को बदन बिलोकत उघरि गई-कलई।

इसका प्रभाव स्पष्ट ही पद्माकर और भुवनेश पर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। पद्माकर ने इसे प्रेम के पंथ सुप्रीत की पैंठ में बदला है—

वे इत घूंघट घाल चलें उत बाजत बांसुरी की धुनि खोलें।
त्यों 'पद्माकर' वे इतै गोरस लै निकसें यों चुकावत मोलें।
प्रेम के पंथ सु प्रीतकी पैठ में देखत ही जो दसा भई औरै।
राधा भई भई स्याम की मूरत स्याम भई भइ राधिका डोलै।

भुवनेस इसके और अधिक समीप आगये है, उन्होंने होलिका विलास में न सही, साधारण विलास में उसका वर्णन किया है—

रूप रच्यौ हरि राधिका को उनहू हरि रूप रच्यौ छबि छाजत।
गावत तान तरंग दुहूं न कौ भाव बताय दुहूंन रिझावत।
त्यौ 'भुवनेस' दुहूंन के नैन दुहूंन के आनन पै टक लावत।
छाय रही छवि वैसई री जो सुनी हुती चंद चकोर कहावत॥

सूर का एक अन्य पद है—

हम तुमसौं विनती करैं, जनि आंखिन भरौ गुलाल।
सह्यौ परत हम पै नहीं, तेरौ निपट अनोखौ ख्याल॥

दरसन तै अंतर परै, हो करहु अबीर-अबीर।
तुमहिं कहौ कैसै जियैं, जहँ मीन न पावै नीर॥

भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद ने इसी भाव पर सान रख कर कहा—

खेलो तुम होरी घोरी केसर कमोरी फैंको,
भरि-भरि झोरी लाज जिय में बिचारो ना।
डारो बहुरंग संग चंग हू बजावो गावो,
सबहि रिझावौ सरसावौं संक धारो ना॥
जोरि कर कहतीं निहारौं 'हरचंद' प्यारो,
मोरी बिनती है एक ताहि तुम टारौ ना।
नैन है चकोर मुख चंद पै परैगी ओट,
तातै इन आंखिन में गुलाल लाल डारौ ना॥

यह प्रभाव हमने अत्यंत सूक्ष्म में दिखाने की चेष्टा की है। यदि हम सम्पूर्ण सूरसागर के पदों की रीति कालीन कवियों से तुलना करें तो ऐसा प्रतीत होगा कि रीति कालीन कवियों ने ऐसी कोई भी युक्ति नहीं कही जिसका उल्लेख सूर ने न किया हो।

बसंत का सूर-संगीत

❀ गायन ❀

प्राचीन काल से ही जन साधारण और संगीत कलाविदों की गायकी में अंतर मिलता है। 'भरत नाट्य शास्त्र' में सप्त स्वर और बाईस श्रुतियों का उल्लेख मिलता है किंतु राग शब्द का उल्लेख उसमें नहीं मिलता किंतु 'जाति' शब्द इसमें समानार्थक रूप में प्रयोग किया गया है, किंतु इसमें 'देशी' का कहीं उल्लेख नहीं किया गया। चौथी पाँचवी शताब्दी में 'मतंग'

नामक गायनाचार्य ने सबसे प्रथम 'बृहद्देशी' नामक ग्रंथ की रचना की। नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें देशी रागों का अधिक उल्लेख है जो शास्त्रीय संगीत से पृथक् हैं। देशी संगीत का परिभाषा उन्होंने इसी प्रकार की है—

अबालबालगोपालैः क्षितिपालैर्निश्चया।
गीयते सानुरागेण स्वदेशे दोशिरुच्यते॥

इस प्रकार स्त्री, बालक, गोपाल और किसानों का स्वेच्छा से गायन किया गया गान 'देशी' कहलाता है। इसको हम इस प्रकार कह सकते हैं कि जो गीत किसी विशिष्ठ बंधनों से रहित हो वह देशी (वर्तमानकाल में इन्हें लोक गीत कहते हैं) तथा शास्त्रीय पद्धति से गाये जाने वाले गीत मार्गी कहलाते हैं। यह देशी और मार्गी की परिभाषा 'संगीत रत्नाकर' तथा 'संगीत पारिजात,' में उसी रूप से मिलती है। सूरदास के काल में दो प्रकार की गायन शैली और क्षेत्र में आगई थी। एक ख्याल टप्पे की तथा दूसरी ध्रुपद प्रणाली की। खयाल टप्पे की प्रणाली के प्रवर्तक थे अमीर खुशरो तथा ध्रपद गायकी के जन्म दाता थे ग्वालियर के तोमर राजा मानसिंह। भक्त कवियों ने अमीर खुसरो की परंपरा को नहीं अपनाया किंतु वे ध्रुपद शैली के पूर्ण अनुगामी बन गये और वह कीर्तन प्रणाली के रूप में आज भी मंदिरों में सुरक्षित है। 'आइने अकबरी' में इसे देशी संगीत माना गया है। यह देशी संगीत क्यों है, इसका कोई कारण नहीं दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अबुल फजल की दृष्टि में मार्गी गायन के अतिरिक्त जितनी भी अन्य गायन प्रणालियाँ थी वे सब 'देशी' थीं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि उस समय भक्त कवियों ने जिस संगीत पद्धति को अपनाया था उसका संबंध देशी

अथवा लोक संगीत से अधिक था जिसको हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। एक ध्रुपद की गायकी जो प्राचीन अथवा मार्गी को नया मोड़ देकर प्रचलित की गई थी किंतु इस समय तक इसके भी भेद हो गये थे जिनमें चार भेद मुख्य माने गये थे। सम्प्रदाय के मतानुसार डागुर वाणी के प्रवर्तक स्वामी हरिदास तथा गोवरहारी के 'गोविंद स्वामी' माने जाते हैं। आज भी वल्लभकुल सम्प्रदाय में इसी ध्रुपद प्रणाली में ही कीर्तन किया जाता है तथा सूरदासके पद भी इसी शैली में गाये जाते हैं।

सूरदास ने बसंत वर्णन में जिन रागों का उल्लेख किया है उनमें राग-बसंत मुख्य है जो बसंत ऋतु में गाया जाता है।

बसंत राग का रूप

कर्नाटक पद्धति में (दक्षिण भारत में) बसंत राग का प्राचीन तथा प्रमाणिक स्वरूप मिलता है जो कि कोमल रिषभ युक्त औडव-षाडव राग है। शुद्ध मध्यम वहाँ अत्यंत प्रमुख स्वर है। इसके प्रसिद्ध आरोह-अवरोह इस प्रकार हैं—

आरोह—स ग म ध नि सां, अवरोह--सां नि ध म ग रे स। यही शुद्ध बसंत करलाता है।

उत्तर भारत में बसंत राग में विविध परिवर्तन हो चुके और यही कारण है कि विभिन्न घरानों में हम इसके विभिन्न प्रकार पाते हैं। तानसेन परंपरा के, पूर्वी भारत के ध्रुपदिये अधिकतर बसंत में शुद्ध धैवत और दोनों मध्यमों का प्रयोग करते है। आरोह औडव और अवरोह षाडव या सम्पूर्ण रहता है। इसका ठाट इस प्रकार है—

आरोह—सा म मं ग म ध नि सां, अवरोह-सां नि ध़ प मं ग मं ग रे़ सा।

दूसरी ओर पाश्चात्य कलावन्तों ने शुद्ध धैवत के स्थान पर कोमल धैवत, दोनों मध्यम तथा अवरोह में पंचम प्रयुक्त किया। बसंत राग का यह रूप अब अधिकाँश संपूर्ण भारत में प्रचलित है क्योंकि ख्यालिये इस प्रकार को ही पसंद करते हैं जिसको पूर्वी प्रदेश के ध्रुपदिये 'परज बसंत' कहते हैं। इसका आरोह-अवरोह इस प्रकार है—

आरोह-सा म ग मं ध़ नि सां, अवरोह—सां नि ध़ प मं ग मं ग रे़ सा।

यह 'परज बसंत' अपना निजी सौंदर्य रखता है जब कि प्राचीन बसंत अत्यन्त गहरी भावनात्मक प्रवृत्तियों और रूपों को सजोये हुए है।

बसंत राग का मानवीकरण

अनेक रागात्मक एवं भावात्मक वस्तुओं की भाँति भारतीय संगीत में स्वर एवं रागों का भी मानवीकरण किया गया है। इसमें मूल रागों का पुरुष रूप तथा एक-एक के साथ छह-छह स्त्री रूपा रागिनी मानी गई हैं। इनकी विविध आचार्यों के मतानुसार विविध नामावली तथा विविध संज्ञा मानी गई है। प्रस्तुत बसंत राग, श्री राग (जिसको सारंग भी कहते हैं) की भार्या है।

इसका स्वरूप शास्त्रों में इस प्रकार वर्णन किया गया है—

सिर मोरपखा उर मोतिन माल, रसाल की मंजरी कान धरी।
तन सुंदर रूप अनूप बन्यौ, यह पीत लसै कर फूल छरी॥
मधुरै स्वर गाय नचै तरुनी, अति प्रीतम के अनुराग भरी।
ऋतुराज बसंत बिलोकत है, नव पल्लव सों द्रुमकुंज हरी॥

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित रागों का प्रयोग बसंत वर्णन में किया गया है–

राग–सूची

रागराज्ञी रामगिरि, राग कान्हरौ, राग काफी, राग गौरी, राग सारंग, राग टोड़ी, राग गूजरी, राग धनाश्री, रागिनी हठी राग नटनारायण, राग कल्याण, राग नंदन, राग विलावल, राग जै जैवंती ।

धमार

धमार शब्द का अर्थ ब्रज में हुड़दंग (ऊधम) से लिया जाता है और यह हुड़दंग होली में जितना अधिक होता है उतना कभी नहीं होता । अतः इस प्रकार के सामूहिक गान जिसमें अनेकों पुरुष तथा अनेकों वाद्यों का समावेश हो उसकी गणना यदि धमार में की जाय तो क्या आश्चर्य है। अतः ब्रज में इस प्रकार के सामूहिक गान का नाम ही धमार होगया प्रतीत होता है । वैसे संगीत में शास्त्रीय दृष्टिकोण से धमार कोई राग नहीं, १४ मात्रा की एक ताल है ब्रज की शास्त्रीय पद्धति की होली प्रायः इसी १४ मात्रा की ताल में विलंबित में गाई जाती है । वैसे तो १४ मात्रा की तालें और भी हैं जिसमें दीपचंदी ठेका, शंखताल आदि भी प्रसिद्ध है । ताल रूपक भी सात मात्रा की हैं किंतु इन सबकी यति तथा मृदंग और तबले के बोल पृथक्-पृथक् हैं । राग काफी (प्राचीन नाम हरिप्रिया) का देवचंदी ठेके में यथेष्ट प्रचार हैं ।

इस प्रकार की धमार बसंत पंचमी से ही आरंभ हो जाती हैं, जो 'समाज' कहलाती है । बल्लभकुल सम्प्रदाय,

राधा बल्लभीय और स्वामी हरिदासजी के टट्टी स्थान में तथा बिहारीजी के मंदिर में इसी प्रकार समाज लगती हैं। वैसे प्राचीन काल में (गुप्तकाल) प्रत्येक पखवारे सरस्वती मंदिर में समाज लगा करते थे जहाँ अन्य स्थानों से आये हुए प्रसिद्ध संगीतज्ञ तथा नृतक अपनी अपनी कला का प्रदर्शन किया करते थे तथा दूसरे दिन उन्हें पुरस्कार दिया जाता था। काम-सूत्र (पृ० ५०-५२) के अनुसार ऐसे समाज सरस्वती मंदिर में ही नहीं अपितु अन्य स्थानों में भी लग सकते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह समाज सरस्वती मंदिर से संबंधित होकर मंदिर की ही वस्तु बन गई तथा पीछे से इसका और भी संकुचित अर्थों में प्रयोग होने लगा और वह होली के अवसर पर मंदिरों में गायकों के समूह के लिये प्रयुक्त होने लगा।

सूर के लोक गीतों तथा तथा शास्त्रीय संगीत के रूप में किस प्रकार प्रचार हुआ अथवा सूर के संगीत पर लोक तत्वों का क्या प्रभाव पड़ा, इस दृष्टि कोण से अध्ययन भी सूर-संगीत का एक पृथक् ही पहलू है जिस पर विचार करना आवश्यक है।

लोक-संगीत

सूरदास की गायकी में जहाँ ध्रुपद शैली का आश्रय लिया गया है, वहाँ कुछ पद ऐसे भी मिलते है जिनका लोक गीतों से संबंध है। सूरदास ने यह बात दूसरी है कि उनको जनता से ग्रहण कर किसी विशेष राग से संबंधित कर दिया दिया हो। ब्रज का एक होली का लोक-गीत इस प्रकार है—

मोहन नंदलाल, बरसाने बनि आयो।
बरसाने बनि आयो, बरसाने बनि आयो ॥मोहन०॥

कै लख आईं ग्वालिनी रे, कै लख आए ग्वाल।
इक लख आई ग्वालिनी रे, द्वै लख आए ग्वाल॥
मोहन नंदलाल बरसाने०

कौन के हाथ पिचकारी रे, कौने सोहै गुलाल।
राधे हाथ पिचकारी रे, कान्हा सोहै गुलाल॥
मोहन नंदलाल बरसाने०

अटि गईं अटा अटारी रे, अटि गईं सब चौपार।
अटि गये कोट कँगूर रे, अटि गईं सब ब्रज नारि॥
मोहन नंदलाल बरसाने०

जमुना अटि सारी गई रे, बापर अट गए लाल।
ऐसी होरी खेलै रे, गिरधारी अपनी सुसराल॥
मोहन नंदलाल बरसाने०

अब इसकी तुलना सूरदास (पद सं० ५६) के पद से कीजिये जो राग धनाश्री में गाया गया है—

छैल छबीले मोहना री, जाके घूँघरवारे केस।
मोर मुकुट कुंडल लसै री, करि लीन्हौं नटवर भेस।

× ×

सुनत चलीं सब धाईं री, देखत नंदकुमार।
फागु साँझ सी ह्वै रही री, उड़ि उड़ि गगन अपार॥

दोनों शब्द रचना, वाक्य विन्यास और कहने की शैली एक सी है। केवल अन्तर इतना है कि जहाँ लोक गीत में स्थाई है वहाँ सूरदास के पद में नहीं है। संभव है सूरदास ने लोक गीत में कुछ परिवर्तन किये हों अथवा इसकी स्थाई खोई हुई हो।

सूर में तानों का पूर्व-रूप

हम पीछे बता आये है कि ब्रज में होली में गाई जाने वाली चौपाईयों के कारण ही 'चौपई' का रूप बना प्रतीत होता है। इन चौपइयों में एक बात और भी दिखाई पड़ती है कि इनके साथ कुछ छंद और भी जोड़ दिये जाते थे जिसको हम होली के अवसर पर गाई जाने वाली 'तानों' का पूर्व रूप कह सकते हैं। ब्रज के कितने ही सज्जनों को इस प्रकार की रचनाएँ याद हैं। इन तानों में किसी प्रकार का विषय-बंधन नहीं होता। वह समाजिक, आर्थिक और धार्मिक किसी भी विषय से संबंधित हो सकती हैं। और होली के अवसर पर पूर्ण स्वतंत्रता से गाई जा सकती है। सूरदास में इस प्रकार की कुछ तानों का आभास मिलता है सूर की एक तान देखिये जो 'राग विभास' में गाई गई है, तथा कृष्ण रूप में मोहित एक गोपी का वर्णन है—

गोकुल गाउं रसीले पिय को। मोहन देखि मिटत दुरू जियको॥
मोर मुकट कुंडल बन माला। या छवि सौं ठाढ़े नंदलाला॥
कर मुरली पीताँबर सोहै। चितवत ही सबको मन मोहै॥
मन मोहियो इन साँवरैं, हौं चकित सी डोलत फिरौं।
और कछु न सुहाइ मन-म,न बैठि-उठि गिरि-गिरि परौं॥
मदन बान सुमार लागे, जाइ पीर न कछु कही।
और कछू उपाइ नाहीं, स्याम वैद बुलावहीं॥
मैं तौ तजी लाज गुरु जन की। अब मोहि सुधि न परै या तन की।
लोग कहैं यह भई है बौरी। सुत-पति छांड़ि फिरत बन दौरी॥
छाँड़ि सुरत सम्हार जिय की, कृस्न छबि हिरदै बसी।
मदन मोहन देखि धाई, वैसियै कुंजनि धँसी॥

कुंज-धाम किसोर ठाड़े, केसरि खौरि बनाइ कै।
चंद्रिका पर प्रान वारौं, बलि गईया भाइ कै॥
इन नैननि बाँध्यौ प्रन भारी। निरखत रहै सदा गिरधारी॥
काहू को कह्यौ मन नहिं आन्यौ। कमल नैन नैननि पहिचान्यौ॥
निरखि नंद-किसोर साखिरी, कोटि किरनि-प्रकासुरी।
कालिन्दी के तीर ठाड़े, स्रवन सुनियत बाँसुरी।
बांसुरी बस किये सुरनर, सुनत पातक नासु री।
सूर के प्रभु यहै विनती, सदा चरनन बासु री।

(ना. प्र. पद संख्या २४१२)

इसके अतिरिक्त और भी अनेक पद इस प्रकार के मिलते है जिनका लोक संगीत से कुछ न कुछ संबंध अवश्य प्रतीत होता है।

❀ नृत्य ❀

चाँचरि—सं० चर्चरी। प्रा० चच्चरी, चाँचरि।

सूरदास ने चांचरि शब्द का प्रयोग दो प्रकार से किया है, एक नृत्य के अर्थ में और दूसरा गीत के अर्थ में।

नृत्य के रूप में चांचरि एक प्रकार का नृत्य है जिसमें पुरुष वर्ग छोटे-छोटे डंडे लेकर गाते हुए मंडलाकार नाचते हैं। मध्य प्रांत में इस प्रकार के नृत्य को अब भी चाँचरि कहते हैं। चांचरि में सम्मलित होने वाले व्यक्तियों में जिनके डंडे ताल की गति पर नहीं मिलते रास से बाहर कर दिये जाते हैं और पूरा नृत्य जमने पर दर्शकों में आनंद की लहर भर जाती है। यह नृत्य फागुन के महीने में होता है तथा विवाह के अवसर पर भी चांचरि होती है।

ब्रज में अहीर जाति में विवाह के समय वर यात्रा के साथ-साथ आगे-आगे नाचने चलते हैं. इसमें इनके साथ बाँसुरी, बेला, और तबला बजता चलता है तथा जब नृत्य ताल पर आता है तभी यह लोग 'हो' शब्द का एक ही साथ मिलकर उच्चारण करते हैं जिससे एक समा बंध जाता है। होली के अवसर पर भी इसी प्रकार सब लोग इकट्ठे होकर गाते-बजाते घर-घर होली मिलने जाते है। आन्योर (गोवर्धन के समीप एक गांव) में इसका परिष्कृत रूप दिखाई पड़ता है। इसमें चैत्र कृष्णा २ को स्त्री-पुरुष गांव के बाहर आकर इकट्ठे हो जाते हैं। एक ओर स्त्रियाँ तथा दूसरी ओर पुरुष आमने-सामने खड़े हो जाते हैं। गीत और रसिया के साथ समारोह आरंभ होता है स्त्रियों के हाथ में छोटे-छोटे डडे होते हैं और वे नाचते-नाचते पुरुषों की देही से डंडों को स्पर्श करती हैं।

वैसे तो संगीत शास्त्र को दृष्टि से चर्चरी राग एक पृथक राग है परंतु ब्रज में इसका एक पृथक् रूप जाव और बठैन नामक ग्रामों की होलियों में दिखाई पड़ता है। इसमें दोनों ओर स्त्री और पुरुष खड़े हो जाते हैं और वे गीत गाना आरंभ करते हैं जिन्हें साखी या चाँचरि कहते हैं। पुरुषों की पंक्ति में से एक पुरुष बाहर आकर गीत आरभ करता है और दूसरे उसका अनुकरण करते हैं। जब गायन समाप्त हो जाता है तब एक स्त्री निकल कर पुरुष के डंडा छुड़ाकर उसे पुरुष पंक्ति में पहुँचा देती है।

सूरदास ने होली वर्णन में केवल चाँचरि का ही उल्लेख किया है किंतु उन अन्य नृत्यों का कोई उल्लेख नहीं किया जिनका ब्रज के लोक जीवन में होलिकोत्सव में महत्व पूर्ण

स्थान रहा है। इनमें से एक चरकला नृत्य है और दूसरा झूला नृत्य।

चरकला—

यह नृत्य चैत्र कृष्णा पतिपदा से पंचमी तक ऊमरी नगरी और रामपुर नामक ग्रामों में रात्रि के समय ग्रामवासियों द्वारा किया जाता है। चरकला काठकी बनी हुई एक विशेष वस्तु होती है जिसमें नीचे एक तँवहेड़ी लगी रहती है। इसमें चारों ओर पंखडियाँ निकली रहती हैं। इन पंखड़ियों में तेल के ४८ दीपक जलाये जाते हैं। इन चरकले लेकर को नृत्य करने वाली नृतकी अपने सिर पर रख कर तथा दोनों हाथों में जल भरे लौटे लेकर चार पाँच घण्टे तक निरंतर नृत्य करती हैं। इस नृत्य की विशेषत: यह होती है कि लय और ताल में निरंतर नाचते रहने पर भी न तो लोटे से पानी ही छलकता है और न कोई दीपक ही बुझता है। इस नृतकी के आगे-आगे एक पुरुष और नृत्य करता हुआ ताल देता जाता है। यह पुरुष प्राय: चरकला उठाने वाली का देवर होता है। जिस समय यह नृत्य समाप्त होता हैं और चरकला उतार कर नीचे रखा जाता है उसी समय अगले वर्ष यह निश्चित हो जाता हैं कि अगले वर्ष चरकला कौन उठायेगी। जिसका नाम इस कार्य के लिये मनोनीत होता हैं वह साल भर इसके लिये अभ्यास करती और अगले वर्ष उसका प्रदर्शन करती हैं।

झूला नृत्य—

इस झूला नृत्य का अर्थ ही दोलोत्सव-नृत्य किया जा सकता है। राधाकुंड के समीप मुखरई नामक ग्राम में चैत्र कृष्णा २ को यह नृत्य प्रदर्शित किया जाता है। लोहे के एक गोल पहिये के चारों ओर दीपक जलाये जाते हैं। उसमें नीचे की ओर फुंदने लगे रहते हैं तथा मध्य में सात घड़े, जो क्रमानुसार

छोटे होते है, रखे जाते हैं। इसे झूला कहते हैं। यह झूला नृतकी के सिर पर रख दिया जाता है और विविध प्रकार के हाव-भावों सहित यह नृत्य आरंभ होता है।

इसके अतिरिक्त मंदिरों में सध्या समय विविध वेष धारण कर अनेक प्रकार की लीलायें और नृत्य होते हैं श्री हित वृंदावन चाचा के होलिकोत्सव के समय अनेक छद्म लीलाओं की होली के अंतर्गत रचना की है जिनमें भगवान कृष्ण अनेक रूप धारण कर श्री राधिका जी के भवनों में पधारते और विविध क्रीयायें करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह लीलाएँ या तो श्री राधावल्लभ जी के मंदिर में होती थी अथवा भक्तों द्वारा इनका अभिनय सर्वसाधारण में किया जाता था।

❀ वाद्य-यंत्र ❀

इसके अतिरिक्त सूर ने अपने पदों में अनेकानेक वाद्य-यंत्रों का उल्लेख, किया है। परिशिष्ट में शब्द कोश में इस विषय पर संक्षिप्त में प्रकाश इस विषय की जानकारी के लिये किया गया है हमारी लिखी 'अष्टछाप के वाद्य यंत्र' नामक पुस्तक पठनीय हैं।

❀ सूर का बसंत ❀

बागन-बागन बीथिन-बीथिन, खेलत फागु सुजान सुथानैं।
गावत राग धमार : महामुद, नाँचत राँचत प्रेम अखानैं ।।
धूँधरि में धँसिकैं कबि 'सेस' जू, दम्पति केलि कला सुख सानैं।
या ब्रजभूमि कौं नित्य बताइ कैं, सूर ह्वै 'सूर' बसंत बखानैं ।।

—'शेष'

बसंत-लीला

नित्य बसंत

कवि राग बिलावल

नित्य धाम बृंदाबन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रज-बाम॥
नित्य रास, जल नित्य बिहार। नित्य मान, खंडिताऽभिसार॥
ब्रह्म-रूप येई करतार। करन हरन त्रिभुबन येइ सार॥
नित्य कुंज-सुख नित्य हिंडोर। नित्यहि त्रिविध-समीर झकोर॥
सदा बसंत रहत जहँ बास। सदा हर्ष, जहँ नहीं उदास॥
कोकिल कीर सदा तहँ रोर। सदा रूप मन्मथ चित-चोर॥
बिबिध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमत अपार॥
नव पल्लव बन सोभा एक। बिहरत हरि संग सखी अनेक॥
कुहु-कुहू कोकिला सुनाई। सुनि-सुनि नारि परम हरषाई॥
बार-बार सो हरहिं सुनावति। ऋतु बसंत आयौ समुझावति॥
फागु-चरित-रस साध हमारैं। खेलहिं सब मिलि संग तुम्हारैं॥
सुनि-सुनि सूर स्याम मुसुकाने। रितु बसंत आयौ हरखाने॥१॥

दूती राग बसंत

राधे जू आजु बरनौं बसंत।
मनहुँ मदन-विनोद बिहरत, नागरी-नवकंत ॥
मिलत सनमुख पटल पाटल, भरति मानहिं जूही।
बेलि प्रथम-समाज-कारन, मेदिनी कंचन गुही ॥
केतकी कुच-कलस कंचन, गरे कंचुकि कसी।
मालती मद-चलित लोचन, निरखि मुख मृदु हँसी ॥
बिरह-व्याकुल मेदिनी कुल, भई बदन बिकास।
पवन-परिमल सहचरी, पिक-गान हृदय हुलास ॥
उत सखा चंपक चतुर अति, कुंद मनु तन-माल।
मधुप मनि-माला मनोहर, सूर स्त्री गोपाल ॥२॥

दूती राग बसंत

ऐसौ पत्र पठायौ नृप बसंत। तुम तजहु मान मानिनी तुरंत ॥
कागद नव दल अंबनि पात। द्वात कमल मसि भँवर सुगात ॥
लेखिनि काम बान कै चाप। लिखि अनंग ससि दीन्ही छाप ॥
मलयानिल चर पठयौ बिचारि। बाँचत सुक-पिक तुम सुनहु नारि ॥
सूरदास क्यौं होइ आन। भजि हरि गोपी तजहु सयान ॥३॥

राग बसंत

कुसुमित बन देखन चलहु आजु। जहँ प्रगट भयौ रितु-रंग-राजु ॥
अति बिबिध कुसुम परिमल बहाइ। बन सुवा सहित पंचम सुहाइ ॥
केकी बोलत पिक-सुर-सनेहि। जुवती-मन अति आनंद देहि ॥
स्त्री मदन मोहन सुंदरता पुंज। स्त्री राधा सँग राजत निकुंज ॥
गावैं सुर-गन दंपति-बिलास। तहँ सदा रहै मन सूरदास ॥४॥

कवि राग बसंत

कोकिल बोली, बन वन फूले, मधुप गुँजारन लागे।
सुनि भयौ भोर, रोर बंदिनि कौ, मदन-महीपति जागे॥
दिन दूने अंकुर द्रुम पल्लव, जे पहिले दव दागे।
मानहुँ रति-पति रीझि जाचकनि, बरन-बरन दए बागे॥
नई प्रीति, नई लता, पुहुप नए, नयन नए रस पागे।
नए नेह नव नागरि हरषित, सूर सुरँग अनुरागे॥५॥

दूती राग बसंत

बेगि चलहु, प्रिय चतुर सयानी।
समय-बसंत विपिन रथ-हय-गज, मदन सुभट नृप फौज पलानी॥
चहूँ दिसा चाँदनी, चमू चलि मनहुँ धवल सोइ धूरि उड़ानी।
सोरह कला छपाकर की छवि सोभित मनहुँ छत्र सिर तानी॥
बोलत-हँसत चपल बंदीजन मनहुँ प्रसंसत पिक बर बानी।
धीर-समीर रटत बन अलि-गन, मनहुँ काम कर मुरलि सुठानी॥
कुसुम-सरासन बान बिराजत, मनहुँ मान-गढ़ अनु-अनु भानी।
सूरदास प्रभु की बेई गति, करहु सहाइ राधिका रानी॥६॥

राधा राग बसंत

देखौ वृंदावन कमल नैन। मनु आयौ मदन गुन गुदरि दैन॥
भए नव द्रुम सुनन अनेक रंग। प्रति ललित लता संकुलित संग॥
कर धरे धनुष कटि कसि निखंग। मनु बने सुभट सजि कबच अंग॥
जहँ नव सुमंत्र बहै मलय बात। अति राजत रुचिर बिलोल पात॥
धपि धाइ धरत मनु तुरै गात। गति तेज बसन बाने उड़ात॥
कोकिल-कूजत, कल-हंस मोर। रथ सैल सिला पद-चर चकोर॥
बर ध्वज पताक तरु तार केरि। निर्झर निसान डफ भँबर भेरि॥

सुनि सूरदास इमि बदत बाल । करि काम कृपन सिव क्रोध काल ।।
हँसि चितै चारु लोचन बिसाल । तिहिं अपनै करि थपियै गुपाल।।७।।

राधा राग बसंत

पिय देखौ बन-छबि निहारि । बार-बार यह कहति नारि ।।
नव पल्लव बहु सुमन रंग । द्रुम-बेलि-तनु भयौ अनंग ।।
भँवरा-भँवरी भ्रमन संग । जमुना करती नाना तरंग ।।
त्रिबिधि पवन मन हरष दैन । सदा बहत नहिं रहत चैन ।।
सूरज-प्रभु करि तुरत गैन । चले नारि-मन सुखद-मैन ।।८।।

बसंत बिलास राग बसंत

वृंदावन खेलहिं स्री गोपाल । सब बनि ठनि आईं ब्रज की बाल ।।
नव बल्ली सुंदर नव तमाल । नव कमल महा नव-नव रसाल ।।
अपने कर सुंदर रचित माल । अवलंबित नागर नंदलाल ।।
नव केसरि नव-अरगजा घोरि । छिरकति नागर कहँ नव किसोरि ।।
नव-गोप बधू राजहीं संग । गज-मोतिनि सुंदर लसति मंग ।।
तहँ गोपी-ग्वाल सुंदर सुदेस । छिरकत सुगंध भए ललित भेस ।।
स्री नंद-नँदन कौ भ्रुव बिलास । आनदित गावत सूरदास ।।९।।

राग बसंत

आयौ आयौ पिय रितु बसंत । दंपति मन सुख बिरह अंत ।।
फागु खेलावहु सग कंत । हा हा करि तृन गहति दंत ।।
तुरत गए हरि लै मनाइ । हरषि मिले उर कंठ लाइ ।।
दुख डार्‌यौ तुरतहिं भुलाइ । सो सुख दुहुँ कैं उर न माइ ।।
रितु बसंत आगमन जानि । नारि न राखी मान-बानि ।।
सूरदास-प्रभु मिले आनि । रस राख्यौ रति रंग ठानि ।।१०।।

राग बसंत

आयौ जान्यौ हरि बसंत। ललना सुख दीन्हौं तुरंत॥
फूले बननि सुमन पलास। रितु नायक सूख कौ बिलास॥
संग नारि चहुँ ग्रास-पास। मुरली ग्रमित करति भास॥
स्यामा स्याम बिलास एक। सुखदायक गोपी ग्रनेक॥
तजत नहीं काहू छनेक। ग्रकल निरंजन बिबिध भेष॥
फाग-रंग-रस करत स्याम। जुवतिनि पूरन करन काम॥
बासरहूँ सुख देत जाम। सूर स्याम प्रभु कंत स्याम॥११॥

राग बसंत

देखत बन ब्रजनाथ ग्राजु, ग्रति उपजत है ग्रनुराग।
मानहुँ मदन बसंत मिले दोउ, खेलत फूले फाग॥
झाँझ, झिली, निर्झर, निसान, डफ, भेरि भँवर-गुंजार।
मानहुँ मदन मंडली रचि पुर-बीथिनि बिपिन बिहार॥
द्रुम-गनमध्य पलास मंजरी, उदित ग्रगिनि की नाईं।
ग्रपनैं ग्रपनैं मेरनि मानौ, होरी हरषि लगाईं॥
केकी, कोक, कपोत ग्रौर खग, करत कुलाहल भारी।
मानहुँ लै लै नाउँ परस्पर, देत दिवावत गारी॥
कुंज-कुंज-प्रिय कोकिल कूजति, ग्रति रस बिमल बढ़ी।
मनु कुल बधू निलज भईं गृह-गृह गावति ग्रटनि चढ़ी॥
प्रफुलित लता जहाँ जहँ देखत, तहाँ-तहाँ ग्रलि जात।
मानहुँ बिट सबहिनि ग्रवलोकत, परसत गनिका गात॥
लीन्हे पुहुप-पराग पवन कर, क्रीड़त चहुँ दिसि धाइ।
रस ग्रनरस सँजोगिनि बिरहिनि, भरि छाँड़त मन भाइ॥
बहु बिधि सुमन ग्रनेक रंग छबि, उत्तम भाँति धरे।
मनु रति-नाथ हाथ सौं सबहीं, लै लै रंग भरे॥

और कहाँ लगि कहौं रूप निधि, बृंदा-बिपिन बिराज ।
सूरदास-प्रभु सब सुख क्रीड़त, स्याम तुम्हारे राज ॥१२॥

राग बसंत

सुंदर बर सँग ललना बिहरति, बसँत सरस ऋतु आई ।
लै लै छरी कुमारि राधिका, कमलनैन पर धाई ॥
सरिता सीतल बहति मंद गति, रबि उत्तर दिसि आयौ ।
अति रस-भरी कोकिला बोली, बिरहिनि बिरह जगायौ ॥
द्वादस बन रतनारे देखियत, चहुँ दिसि टेसू फूले ।
मौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली, मधुकर परिमल-भूले ॥
इत स्री राधा उत श्री गिरिधर, इत गोपी उत ग्वाल ।
खेलत फागु रसिक ब्रज-बनिता, सुंदर स्याम तमाल ॥
चोवा चंदन अबिर कुमकुमा, छिरकत भरि पिचकारी ।
उड़त गुलाल-अबीर, जोति रबि दिसि दीपक उँजियारी ॥
ताल मृदंग बीन, बाँसुरी डफ, गावत गीत सुहाए ।
रसिक गुपाल नबल-ब्रज बनिता, निकसि चौहटैं आए ॥
झूम-झूम झूमक सब गावति, बोलति मधुरी बानी ।
देति परस्पर गारि मुदित मन, तरुनी बाल सयानी ॥
सुर-पुर, नर-पुर, नाग-लोक, जल-थल क्रीड़ा-सुख पावै ।
प्रथम-बसंत-पंचमी लीला, सूरदास जस गावै ॥१३॥

होलिकोत्सव

फागु-आरंभ

गोपियों का यशोदा से कृष्ण माँगना—

राग सारंग

(आलीरी) नंद-नँदन वृषभानु-कुँवरि सौं, बाढ्यौ अधिक सनेह।
दोऊ दिसि पै आनँद बरसत, ज्यौं भादौं को मेह।
सब सखियाँ मिलि गईं महरि पै, मौंहन माँग्यौ देहु।
चार दिना होरी के अवसर, बहुरि आपनो लेहु।
झुकि परत है कुँवरि राधिका, देति परस्पर गारि।
अब कहाँ दुरे साँवरे ढोटा, फगुआ देहु हमारि।
हँसि-हँसि कहति जसोदा रानी, गारी मत कोउ देहु।
सूरदास स्याम के बदलैं जो चाहौ सो लेहु ॥१४॥

सखी द्वारा कृष्णागमन सूचना—

राग श्रीहठी

तेरे आवैंगे आजु सखी, हरि खेलन फागरी।
सगुन सँदेसो हौं सुन्यौ, तेरे आँगन बोलै कागरी॥
मदनमोहन तेरे बस भए, सुनि राधे बड़ भाग री।
बाजत ताल, मृदंग, झाँझ, डफ, का सौवै उठि जागरी॥
चोबा, चंदन और कुमकुमा, केसर लै पैंय्या लागरी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, राधा अचल सहागरी॥१५॥

राधा का आनंदित होना, खेल वर्णन—

राग श्रीहठी

हौं तौ आजु नंदलाल सौं, खेलौंगी सखि होरी।
ललिता बिसाखा आँगन लिपावौ, चौक पुरावौ रोरी॥
मलयज, मृगपद केसरि लै लै, मथि-मथि भरी कमोरी।
नव-सत साजि सिंगार करौ सब, भरहु गुलालहिं झोरी॥
ज्यौं उड़गन मैं इंदु सहेलिन में त्यौं राधा गोरी।
इक गोरी इक साँवरी हो, इक चंचल इक भोरी॥
बरजति सखि बरज्यौ नहिं मानैं, लै पिचकारी दौरी।
उत रग लै पिय ऊपर डारयौ, पियहु रंग मैं बोरी॥
ब्रह्मा इन्द्र देव गन गंधर्ब, बरखैं, पुहुप वाटिका खोरी।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, चिरजीवौ कर जोरी॥१६॥

कृष्ण होली खेलने बरसाने आये—

राग सारंग

निकसि कुँवर खेलन चले, रँग होरी।
मौंहन नंद किसोर, लाल रँग होरी॥
कँचन माँट भराइ कै, रँग होरी।
सौंधैं भरी कमोर, लाल रँग होरी॥

झाँझ, ताल, सुर-मंडले रँग होरी।
बाजत मधुर मृदंग, लाल रँग होरी॥
तिन में परम सुहावनी, रँग होरी।
महुवरि बाँसुरि चँग, लाल रंग होरी॥
खेलत रँगीले लाल जू, रंग होरी।
गए बृषभानु की पौरि, लाल रंग होरी।
जे ब्रज हुतीं किसोरिका. रंग होरी।
ते सब आईं दौरि, लाल रँग होरी॥
सखि सुख देखन कारनैं, रँग होरी।
गाँठ दुहुनि की जोरि, लाल रँग होरी॥
फगुआ दियौ न जाइ जो, रँग होरी।
लागौ राधा पाँइ, लाल रँग होरी॥
यह सुख सब कैं मन बसौ रँग होरी।
सूरदास बलि जाइ, लाल रंग होरी॥१७॥

कृष्ण का राधा गृहागमन—

राग मालकौशिक

नागर रसिक अरु रसिक नागरी।

बलि-बलि जाउँ देखि अब दंपति, प्रमुदित लीला प्रथम फागरी॥
राधा दधि मंथान आपने गेह करत धरि सुकर पागरी।
तब हरि उठ आए औचानक, उससि सीस सचि ढरत गागरी॥
लै उसाँस अंजरि भरि लीन्हों बिदुरति दधि जु अनुपम आँगरी।
अति उमँगाति स्याम धन छिरकैं, मनु बिथुरी बगपाँति माँगरी॥
मौंहन मुसकि गही दौरत मैं, छुटी तनी छँद रहित घाँगरी।
जनु दामिनि बादरते बिमुख, बपु तरपत ततछन लई लाँगरी॥
परमानंदित परम दंपति ऐसैं, पट तैं परसत परत दाग री।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, का बरनौं ब्रज-जुवति भागरी॥१८॥

राधा-कृष्ण की गुलालमयी होली—

राग बसंत

खेलत नवल किसोर-किसोरी।
नँद-नँदन वृषभानु-सुता, चित लेत परस्पर चोरी॥
औरौ सखी जाल बन सोभित, सकल ललित तन गोरी।
तिनकी नख सोभा देखत हीं, तरनिनाथ हू की मति भोरी।
एक गुलाल अबीर लिये कर, इक चंदन, इक रोरी।
उपरा-अपरि छरकि रस-सर भरि, कुल की परिमिति फोरी।
देति असीस सकल ब्रज-जुवती, जुग-जुग अविचल जोरी।
सूरदास उपमा नहिं सूझत जो कछु कहूँ सो थोरी॥१९॥

बरसाने की रंग रंगीली होली—

राग कान्हरौ

हरि-सँग खेलत हैं सब फाग।
इहिं मिस करति प्रगट गोपी, उर-अंतर कौ अनुराग॥
सारी पहरि, सुरँग कसि कंचुकि, काजर दै-दै नैन।
बनि-बनि निकसि-निकसि भईं ठाढ़ीं, सुनि माधौ के बैन॥
डफ, बाँसुरी, रुंज अरु महुअरि, बाजत ताल, मृदंग।
अति आनँद मनोहर बानी, गावत उठत तरंग॥
एक कौंध गोविंद ग्वाल सब, एक कौंध ब्रज-नारि।
छाँडि सकुच सब देति परस्पर, अपनी भाई गारि॥
मिलि दस पाँच अली चलि कृस्नहिं गहि लावति अचकाइ।
भरि अरगजा, अबीर कनक-घट, देति सीस तैं नाइ॥
छिरकति सखी कुमकुमा केसरि, भुरकति बंदन-धूरि।
सोभित है तनु साँझ समै-घन, आए हैं मनु पूरि॥
दसहूँ दिसा भयौ परिपूरन, 'सूर' सुरँग प्रमोद।
सुर बनिता कौतूहल भूलीं, निरखत स्याम-बिनोद॥२०॥

बरसाने की होली—

राग सारंग

कर लिये डफहिं बजावैं, हो हो हो सनाक खेलार होरी की।
संग सखा सब बनि-बनि आवत, छवि मोहन हलधर जोरी की॥
ताल मृदंग बजावत गावत, भाबति धुनि मुरली थोरी की।
लाल गुलाल समूह उड़ाबत, फेंट कसे अबीर झोरी की॥
खेलत फाग करत कौतूहल, मत्त फिरैं मनमथ धोरी की।
बरन-बरन सिर पाग चौतनी, कछ कटि छबि चंदन खोरी की॥
उतहिं सुनत वृषभानु-सुता लई, तरुनि बोलि सब दिन थोरी की।
नीलांबर कंचुकि सुरंग तनु, अति राजति राधा गोरी की॥
मनु दामिनि घन मध्य रहति दुरि प्रगट हँसनि चितबन भोरी की।
नख सिख सजि सिंगार ब्रज-जुवती तन डँड़िया कुँसुभी बोरी की॥
पान भरे मुख चमकत चौका, भाल दिए बेंदी रोरी की।
कनक-कलस कोटिक कर लीन्हे, भरि फूलेल रँग रँग धोरी की॥
जुबति-बृंद बृजनारि संग लै, जाइ गहनि ब्रज की खोरी की।
घर-घर तें धुनि सुनि उठ धाईं, जे गुरुजन पुरजन चोरी की॥
हाथन लै भरि-भरि पिचकारी, नाना रँग सुमन बोरी की।
कोउ मारत कोउ दाउँ निहारति, अरस-परस दौरा-दोरी की॥
उतहिं सखा कर जेरी लीन्हैं, गारी देहिं सकुच थोरी की॥
इतहिं सखी कर बाँस लिये बिच, मार मची झोरा-झोरी की।
पाछे तें ललिता चन्द्रावलि, हरि पकरे भुज भरि कौरी की।
ब्रज-जुवती देखति ही धाईं, जहां-तहां तै चहुँ ओरी की॥
इक पट पीतांबर गहि झटक्यौ, इक मुरली लई कर मोरी की।
इक मुख सौं सुख जोरि रहत, इक अंक भरति रतिपति भोरी की॥
तब तुम चीर हरे जमुना तट, सुधि बिसरे माखन चोरी की।
अब हम दाउँ आपनौ लैहैं, पाँय परौ राधा गौरी की॥

अपने अपने मन-सुख कारन, सब मिलि झकझोरा झोरी की।
नीलांबर पीतांबर सौं लै, गाँठि दई कसि कै डोरी की॥
कनक कलस केसरि भरि ल्याईं, डारि दियौ हरि पर ढोरी की।
अति आनंद भरी ब्रज जुवती, गाबति गीत सबै होरी की॥
अमर बिमान चढ़े सुख देखत, पुहुप बृष्टि जै-धुनि-रोरी की।
'सूरदास' सो क्यौं करि बरनैं, छबि मोहन-राधा जोरी की॥२१॥

बरसाने की होली—

राग बिलावल

सुनतहिं बृषभानु-सुता जुवति सब बुलाईं।
आए बलराम स्याम, आईं तजि काम बाम,
धाम-धाम तैं आतुर, सात नव बनाई॥
हरषत सब ग्वाल बाल, अरस परस करत ख्याल,
इक मारत, इक भाजत राजति बहु जोरी।
उततैं निकसी कुमारि, संग लिये बिपुल नारि,
कोउ-कोउ नव जोबन भरी, कोउ-कोउ दिन थोरी॥
इत उत मुख दरस भयौ, पिय पूरन काम कियौं,
मानौं ससि उदै भयौ, आनँदित चकोरी।
उत जेरी धरैं ग्वार, बाँसनि इत परी मार,
इहिं छबि नहिं वार पार, सोर झोर झोरी॥
उत होरी पढ़त ग्वार, इत गारी गावत ये,
नद नाहिं जाये तुम, महरि गुननि भारी।
कुलटी उनतैं को है, नंदादिक मन मोहै,
बाबा बृषभानु को वै, सूर सुनहु प्यारी॥२२॥

बरसाने की होली—

राग काफी

खेलत फागु कुँवर गिरिधारी।
अग्रज, अनुज, सुबाहु, श्रीदामा, ग्वाल बाल सब सखाऽनुसारी॥
इत नागरि निकसी घर-घर तैं, दै आगैं वृषभानु - दुलारी।
नव सत सजि ब्रजराज-द्वार मिलि, प्रफुलित बदन भीर भई भारी॥
दुंदुभि ढोल पखाबज आवज, बाजत डफ मुरली रुचिकारी।
मारति बाँस लिए उन्नत कर, भाजत गोप त्रियनि सौं हारी॥
एक गोप इक गोपी कर गहि, मिलि गए हलधर सौं भुज चारी।
मिटि गई लाज सम्हार न कुचपट बहुत सुगंध दियौ सिर ढारी॥
बाँह उचाइ कहत हो होरी लै-लै नाम देत प्रभु गारी।
इतहिं राधिका निकसि जूथ तैं सन्मुख-पिय छाँड़त पिचकारी॥
इक गोपी गोपाल पकरि कैं, लै चली अपनैं मेर उसारी।
आंजति आँखि, मनावति फगुआ, हँसति हँसावति दैकर तारी॥
सुर बिमान नभ कौतुक भूले, कोटि मनोज जाइ बलिहारी।
'सूरदास' आनंद-सिंधु मैं मगन भए ब्रज के नर-नारी॥२३॥

लठामार होली का वर्णन—

राग श्रीहठी

मोहन के खेलन मैं रस रह्यौ, स्याम परी बिकाइ।
खेलन चले करत अति तरकैं, मारत पीक पराइ॥
पेलि चलीं जोबन मदमाती अधर-सुधा-रस प्याइ।
खेलत बने दोउ रँगभीने, स्यामा-स्याम खिलाइ॥
इत लिऐ कनक-लकुटिया नागरि, उत जेरी धरैं ग्वार।
इत है रँग रँगीली राधा, उत स्त्री नंद-कुमार॥

खेलत मैं रिस ना करि नागरि, स्यामहिं लागै चोट।
मौंहन है अति माधुरि-मूरति राखियै अंचल ओट॥
मारि डगैं जब फिरि चली सुंदरि, बेनी रुरै सु-अंग।
बदन चंद के मनहुँ सुधा कौं, उड़ि-उड़ि लगत भुजंग॥
रुंज, मुरज, ढफ, झाँझ, झालरी, जंत्र पखावज तार।
मदनभेरि अरु राय गिरिगिरी सुर-मँडल झनकार॥
एक जु आई आन गांवते सुंदरि परम सुजान।
यह ढोटा धौं आहि कौन कौ मारत मनसिज बान॥
जमुना-कूल मूल बँसीवट गावत गोप धमारि।
लै लै नाउँ गाउँ बरसानो, देत दिबाबत गारि॥
खेलि फाग मिलि कै मनमोहन फगुवा दियौ मँगाइ।
हरषित भईं सकल ब्रज-बनिता सूरदास बलिजाइ॥२४॥

राग सारङ्ग

हो हो होरी खेलैं रंग सौं, ब्रजराज-कुंवर वृषभानु पौरि।
सुनि मुरली, डफ, ताल, बेनु, चढ़ीं अटा अटारिनि दौरि-दौरि॥
जो प्यारी न्यारी छबि सौं देखत, जलधर कौं छबि अपार।
घन घटा अटा मंद छटकै ह्वै, उदित चंद बादर बिदार॥
जो प्यारे कौं हितू हुतीं, ते उझकि झरोखैं झाँक वार।
करषैं भौंह भाव भेदनि बहु हरषैं बरषैं रंग अपार॥
इक प्यारी चंदन घसि छिरकै, एक लिये कर मैं गुलाल।
इक प्यारी केसरि छिरकत है, भनत सूर चलि गति मराल॥२५॥

ब्रज की खोरी में होरी—

राग सारङ्ग

स्यामा-स्याम खेलत दोउ होरी। फागु मच्यौ अति ब्रज की खोरी॥

इतहिं बनी वृषभानु-किसोरी। सँग ललिता चंद्रावलि जोरी॥
ब्रज-जुवती सँग राजति भोरी। बनि सिंगार स्री राधा गोरी॥
उतहिं स्याम हलधर दोउ जोरी। बारौं कोटि-काम-छबि थोरी॥
ग्वाल अबीरनि की लिए झोरी। सुरँग गुलाब अरगजा रोरी॥
गावति सबै मधुर सुर गोरी। तान लेति दै-दै झकझोरी॥
राधा सहित चंद्रावलि दौरी। औचक लीन्ही पीत पिछौरी॥
देखत ही लै गई अँजोरी। डारि गई सिर स्याम ठगोरी॥
ग्वाल देत होरी की गारी। बैर कियौ हमसौं तुम भारी॥
हँसति परस्पर जोबन-बौरी। लै आईं हरि पीत पिछौरी॥
घात करति मन मुरली कौ री। अधरन तैं नहिं टारति जोरी॥
भली करी तुम सब हम सौं री। सावधान अब होहु किसोरी॥
स्याम चितै राधा मुख ओरी। नैन-चकोर चंद दरस्यौ री॥
पिय कौं पिया मोहिनी लाई। इहि अंतर गोपी हँसि धाई॥
गह्यो हरषि भुज ललिता जाई। गई स्याम की सब चतुराई॥
मनमाने सब करति बड़ाई। राधा-मोहन गाँठि जुराई॥
करति सबै रुचि की पहुनाई। नंद महर कौं गारी गाई॥
फगुवा हमकौं देहु मँगाई। पँचरँग सारी बहुत दिबाई॥
तुरत सबै जुबितिनि पहिराई। लीन्ही जो जाके मन भाई।
खेलत फागु रह्यौ रस भारी। बृद्ध किसोर बाल अरु नारी॥
अति स्रम जानि गए जल-तीरा। ग्वाल ग्वारि हलधर हरि-बीरा॥
परम पुनीत जमुन-जल-रासी। क्रीड़त जहाँ ब्रह्म अबिनासी॥
धन्य-धन्य सब ब्रज के बासी। बिहरत हैं हरि सँग करि हाँसी॥
जल-क्रीड़ा तरुनिनि मिलि कीन्हौ। ब्रज नर-नारिनि कौं सुख दीन्हौ॥
करि अस्नान चले ब्रज-धामा। करे सबनि के पूरन कामा॥
जो सुख नंद जसोदा पायौ। सो मुख नाहीं प्रगट बतायौ॥
सुर बनिता यह साध बिचारैं। कैसैं हरिसंग हमहुँ बिहारैं॥

धन्य-धन्य जे ब्रज की बाला। धन्य-धन्य गोकुल के ग्वाला ।।
सूर स्याम जिनके सुखदाई। भुव प्रगटे हरि हलधर भाई ।।२६।।

खोरि-साँकरी की लीला—

राग काफी

राधा मोहन रंग भरे हैं खेल मच्यौ ब्रज-खोरि।
नागरि संग नारि गन सोहैं, स्याम ग्वाल सँग जोरि ।।
हरि लिए हाथ कनक-पिचकारी, सुरँग कुंकुमा घोरि।
उतहिं माट कंचन रँग भरि-भरि, लै आईं तिय जोरि ।।
आतुर ह्वै धाईं उत नागरि, इत बिचरे सब ग्वाल।
घेरि लईं सब खोरि साँकरी, पकरे मदन गुपाल ।।
गह्यौ धाइ चंद्रावलि हँसि कै, कह्यौ भले हो लाल।
जनि बल करौ नैंकु रहौं ठाढ़े, जुरि आईं ब्रज बाल ।।
आईं हँसति कहत हरि येई, बहुत करत हे गाल।
क्यौंजू खबरि कहौं यह कीन्हौ, करत परस्पर ख्याल।।
काहू तुरत आइ मुख चूम्यौ, कर सौं छुओ कपोल।
कोउ काजर कोउ बँदन माँड़ति,हरखहिं करहिं कलोल।।
कोउ मुरली लै लगी बजावन, मन भावन-मुख हेरि।
किनहुँ लियो छोरि पट-कटि तैं,बारत तन पर फेरि ।।
सबननि लागि कहति कोउ बातैं,बसन हरे तेइ आप।
काल्हि कह्यौ करिहौ कह मेरो, प्रगट भयौ सोइ पाप।।
कोउ नैनन सौं नैन जोरि कै, कहति न मोतन चाहौ।
अब ही तुम अकुलात कहा हौ, जानहुगे मन लाहौ ।।
घेरि रहीं सरधा की नाँई, करति सबै मन-लाह।
इक बूझति, इक चिबुक उठावति,बस पाए हरि नाह ।।२७।।

पीताम्बर मुरली लई तब हौं, जुबती स्वाँग-बनाइ।
देखत सखा दूर भए ठाढ़े, निरखत स्याम लजाइ॥
नख-छत-छाप बनाइ पठाए, जान मान गुन एहु।
सूर स्याम हम कौं जनि बिसरौ, चिन्ह इहै तुम लेहु॥२७॥

राग काफी

तुम चलौ सबै मिलि जाँइ, खेलन होरियाँ।
अपनी-अपनी सुरंग चूनरी, मोतिन माँग भरोरियाँ॥
थरथरात अधरन पर मोती, अँगिया केसरि बोरियाँ।
चोबा, चंदन, अगर कुमकुमा, भरि-भरि देत कमोरियाँ॥
अंग सौं अंग गुलाल बिराजत, भली बनी यह जोरियाँ।
केहरि लंक नितंब बिराजत, गज गति चाल चलोरियाँ॥
पिचकारी मोहन पैं डारत, बिहँसी घूँघट खोलियाँ।
बाजत ताल मृदंग ढोल डप, पढ़ि-पढ़ि बोलत बोलियाँ॥
नैन आँजि मुख माँडि स्याम कौ, सब मिलि करत कलोलियाँ।
सूरदास प्रभु सब सुख क्रीड़त, बिहरत ब्रज की खोरियाँ॥२८॥

राग श्रीहठी

स्याम संग खेलन चली स्यामा, सब सखियन कौं जोरि।
चंदन अगर कुमकुमा केसरि, बहु कंचन-घट घोरि॥
खेलत मोहन रंग भरे हो, संग बाल ब्रज-बासि।
लाल पियारौ रूप उजारौ, सब सुख सुंदर सब सुख रासि॥
फूलनि के गैंदुक नौलासी, कनक लकुटिया हाथ।
जाइ गही ब्रज खोरि राधिका, कोटिक जुबती साथ॥
उतते हरि आए जब खेलत, हो हो होरी संग।
कान परी सुनियै नाहीं, बहु बाजत ताल मृदंग॥
पहिलैं सुधि पाई नहीं तब, घिरे साँकरी खोरि।
अब हलधर उलटहु काहे तुम, धावहु ग्वालन जोरि॥

धरत, भरत, भाजत, राजत, गेंदुक नौलासी मार।
रसन बसन छूटत न सँभारत, टूटत हैं उर हार॥
जब मोहन न्यारे कर पाए, पकरे चहुँ दिसि घेरि।
बोलहु जु अब आन छुड़ावैं, बल भैया कौं टेरि॥
आजु हमारे बस्य परे हो, जैहौ कहां छुड़ाइ।
की बल छूटहु आपने, की जसुमति माइ बुलाइ॥
एक गहे कर, एक फेंट पीतांबर लियो, छँड़ाइ।
राधा हँसति दूरि भइ ठाड़ी. सखियन देति सिखाइ॥
एक स्रवन मैं कहि कछु भाजति, एक भरति अँकवारि।
एक निहारति रूप माधुरी, एक अपुन पौ वारि॥
एक चिबुक गहि बदन उठावति, हम तन लाल निहारि।
एक नैन की सैन मिलावति, एक उठति दै गारि॥
आँई भूमि सकल ब्रज-बनिता, हरि देखी चहुँ ओर।
राधा दृष्टि परैं बिन मौंहन, तलफत नैन चकोर॥
हरि तब अपने कर बर सों, घूँघट पट कीन्हौं दूर।
हँसत प्रकास भयो चहुँ दिसि मैं, सुधा किरनि भरि पूर॥
आँख दिखाबत हौ जु कहा तुम, करिहौ कहा रिसाइ।
हम अपनौ भायौ करि लै हैं, छुवहु कुँबरि के पाइ॥
तब तुम अंबर हरे हमारे, कीन्है कौन उपाइ।
अब तो दाउँ परयौ धरि पाये, छांड़हिं, तुमहिं नँगाइ॥
मुख की कहति सबै झूठी, मनहीं मन बहुत सनेहु।
कूट करैंगे बल भैया अब हम ही छाँडि किमि देहु॥
तुम जो फगुवा दैहौ कहा बलि, बोलत साँचे बोल।
की हमसौं हाहा करिए, की देहु श्रीदामा ओल॥
हँसि-हँसि कहत, सहत सबही की आभूषन सब लेहु।
नासा कौ मुक्ता अरु मुरली, पीतांबर मोहि देहु॥

एक बनाइ देति बीरी, कर पल्लव छुवति कपोल।
धन्य-धन्य बड़ भाग सबहि के, बस कीन्हे बिनु मोल॥
उड़त गुलाल अबीर कुमकुमा, छवि छाई जनु साँझ।
नाहीं दृष्टि परत राधा-मुख-चँद्र नीलांबर माँझ॥
खेलि फाग अनुराग बढायौ, धर मची अरगजा कीच।
ब्रज बनिता कुमुदिनि सी फूली, हरि ससि राजत बीच॥
अष्ट सिद्धि, नव निधि, ब्रज-बीथिनि डोलति घर-घर बार।
सदा बसंत बसंत बृंदाबन, लता लरकि द्रुम-डार॥
देखि-देखि सोभा-सुख-संपति, यह जिय करति बिचारि।
ब्रज बनिता हम किन न भईं, यों कहति सकल सुर-नारि॥
फाग खेलि अनुराग बढ़ायो सबके मन आनंद।
चले जमुन अस्नान करन कौं, सखा सखी नँद-नद॥
दुष्टनि-दुख, संतन सुख कारन, ब्रज लीला अबतार।
जै-जै ध्वनि सुमनन सुर बरषत, निरखत स्याम बिहार॥
जुगल-किसोर चरन-रज माँगौं, गाऊँ सरस धमारि।
श्रीराधा गिरबरधर ऊपर, सूरदास बलिहारि॥२६॥

राग नट नारायन

खेलत फागु कहत हो होरी।
उत नागरी समाज बिराजति इत, मोहन हलधर की जोरी॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, रुंज मुरज बाँसुरि धुनि थोरी।
स्रबन सुहाइ गारि दै गावति, ऊँची तान लेत प्रिय गोरी॥
कोटि मदन दुरि गयौ देखि छबि, नेऊ मोहे जिनकी मति भोरी।
मोहन नंद-नँदन रस बिथकित, कोहू दृष्टि जाति नहिं मोरी॥
कुमकुम रंग पिचकारी उत्तम, छिरकत नबल किसोरी।
यह बिधि उमँगि चल्यो रँग जहँ तहँ, मनु अनुराग सरोबर फोरी॥

कबहुँक मिलि दस बीसक धावति,लेति छिनाय मुरलि झकझोरी ।
जाइ स्रीदामा लै आवत तब, दै मानिन बहु भाँति पटोरी ॥
भरि कर कमल अबीर उड़ावत, गोबिंद निकट जाइ दुरि चोरी ।
मनहुँ प्रचंड पवन बस पंकज-धूरि गगन सोभित चहुँ ओरी ॥
कनक-कलस कुमकुम भरि लीन्हो, कस्तूरी मिलि कैं घिस घोरी ।
खेल परस्पर कीच मची घर, अधिक सुरंग भई ब्रज-खोरी ॥
ग्वाल बाल सब संग मुदित मन, जाइ जमुन जल न्हाइ हिलोरी ।
नए बसन आभूषन पहिरत, औरन देत पाटाँबर छोरी ।
दुइज समाज समेत करत द्विज, तिलक दूब-दधि रोचन रोरी ।
सूर स्याम बिप्रन बदीजन देत, रतन कंचन की बोरी ॥३०॥

राग सारंग

बनी रूप रँग राधिका, तातैं अधिक बने ब्रजनाथ (हो) ।
ललिता अरु चंद्रावली, मिलि बन्यौ छबीलो साथ (हो) ॥
ताल पखावज बाजहीं, सँग डफ मुरली की घोर (हो) ।
नंद-द्वार औसर रच्यौ, कोउ राजत नबल किसोर (हो) ॥
एक कौंध ब्रज सुँदरी एक कौंध गुवाल गुबिंद (हो) ।
सरस परस्पर गावहीं दै, गारि नारि बहु बृंद (हो) ॥
आबहु री हम दुरि रहैं, बलभद्र कृस्न गहि देहिं (हो) ।
लोचन उनके आँजहीं, अरु अधरन को रस लेहिं हो ॥
सीला नाम गुवालिनी, तेहि गहे कृष्ण धपि धाइ (हो) ।
उपरैना मुरली लई, मुख निरखि हरषि मुसकाइ (हो) ॥
गहे अचानक राधिका, रही कंठ भुज लाइ (हो) ।
मन के सब सुख भोगिए, जब परसे जादवराइ (हो) ॥
कोटि कलस भरि बारुनी, दई बहुत मिठाई पान (हो) ।
राधा माधव रस रह्यौ, सब चले जमुन-जल न्हान (हो) ॥
द्वितिया सकल समाज सौं, पट बैठे आनँदकंद हो ।

दान देति ब्रज-सुँदरी, नग भूषन नवनिधि नंद (हो) ॥
बन बीथिनि भरु पुर गलिन, उमँग्यौ रंग अपार (हो)।
'सूर' सु नभ सुर थकि रहे, निरखत प्रान-अधार (हो) ॥३१॥

लठामार होली—

बल्लभ राजकुमार छबीले हो ललना। (टेक)
धनि-धनि नँद-जसोमति, धनि-धनि गोकुल गाउँ।
धन्य कुँवर दोऊ लाड़िले, मन मोहन जिन नाउँ॥
सखा नाम लै बोलहीं, सुबल तोष स्रीदाम।
जहाँ तहाँ तें उठि चले, बोलत सुंदर स्याम॥
गिरिबरधारी रस भरे, मुरली मधुर बजाइ।
स्रबन सुनत गोपी सबै, घर-घर तें चलीं धाइ॥
बेष बिचित्र बनाइ कै, भूषन बसन सिंगारि।
मंदिर तें सब सज चले, बालक बल बनबारि॥
एक ओर जुबती जुरीं, एक ओर बलबीर।
बाँसनि मार मची मनौं, रुपे सुभट रनधीर॥
सकलि बधू आईं सबै, अपने-अपने टोल।
झूमक सेती गाबहीं, बिच-बिच मीठे बोल॥
एक सखी तब सैन दै, लीन्हौ सुबल बुलाइ।
हा हा क्यौं हूँ भाँति कै, मोहन कौं पकराइ॥
बहुरि उलटि ब्रज सुंदरी, मोहन लीन्हे घेरि।
नैनन काजर दे चलीं, हँसत बदन-तन हेरि॥
रुंज मुरलि डफ दुंदभी, बाजै बहु बिधि साज।
बिच-बिच भेरी झिमझिमी, सब्द सुघोष समाज॥
इहि बिधि होरी खेलहीं, सकल घोष सुखदाइ।
गिरबरधारी रूप पर, सूरज जन बलि जाइ॥३२॥

नठा सार होली—

राग श्रीहठी

रितु बसंत के आगमहिं, मिलि झूमक हो।
सुख सदन मदन को जोर, मिलि झूमक हो॥
कोकिल बचन सोहावनौ, मिलि झूमक हो।
हित गावत चातक मोर, मिलि झूमक हो॥
वृंदावन तरुमाल मिलि, झूमक हो।
सब फूलि रही बनराइ, मिलि झूमक हो॥
जमुना पुलिन सुहावनौ, मिलि झूमक हो।
बहै त्रिबिध पवन सुखदाइ, मिल झूमक हो॥
जहाँ निवारी सेवती, मिलि झूमक हो।
बहु पाँड़ल त्रिपुल गँभीर, मिलि झूमक हो॥
खूभौ, मरुवौ, मौंगरौ, मिलि, झूमक हो।
कुल केतकि, करनि कनीर, मिलि झूमक हो।
नव-बल्ली-रस बिलसहीं, मिलि झूमक हो।
मनु-मुदित मधुप की माल, मिलि झूमक हो॥
ताल-पखाबज बाजहीं, मिलि झूमक हो।
बिच डफ मुरली की घोर, मिलि झूमक हो॥
चलहु अली तँह जाइए, मिलि झूमक हो।
जहाँ खेलत नंदकिसोर, मिलि झूमक हो॥
जूथनि-जूथनि सुंदरी, मिलि झूमक हो।
जिन जोबत लजत अनंग, मिलि झूमक हो।
चोवा चंदन अरगजा, मिलि झूमक हो॥
मथि लै निकसीं इक सँग, मिलि झूमक हो।
अँग-अँग भूषन साजि कैं, मिलि झूमक हो॥
लिए कनक कलस भरि रंग, मिलि झूमक हो।

जाइ परस्पर छिरकहीं, मिलि झूमक हो ॥
प्रिय स्यामल सुंदर अंग, मिलि झूमक हो।
इततें गईं ब्रज-सुंदरी, मिलि झूमक हो ॥
उत मोहन नबल-अहीर, मिलि झूमक हो ।
बाँस धरे, जेरी धरे, मिलि झूमक हो ॥
बिच मार मचीं भई भीर, मिलि झूमक हो ।
इक सखि निकसी झुंड तैं, मिलि झूमक हो ॥
धरि लिए आइ ब्रजनाथ, मिलि झूमक हो ।
तिनि पकरि लिए हरि हाथ, मिलि झूमक हो ॥
इक पट पीताँबर गह्यो, मिलि झूमक हो ।
इक मुरली लई छिड़ाइ, मिलि झूमक हो ॥
इक मुख मींडहि कुमकुमा, मिलि झूमक हो ।
एक गारी दै उठीं गाइ, मिलि झूमक हो ॥
प्यारी कर काजर लियौ, मिलि झूमक हो ।
हँसि आँजति पिय की आँखि, मिलि झूमक हो ॥
इहिं विधि हरि को घेरि रहीं, मिलि झूमक हो ।
ज्यौं घेरि रहीं मनु-माखि, मिलि झूमक हो ॥
अब तो घात भली बनी, मिलि झूमक हो ।
तब चीर हरे, जल तीर, मिलि झूमक हो ॥
सो परिहस हम सारि हैं, मिलि झूमक हो ।
सुनि लेहु ललन बलबीर, मिलि झूमक हो ॥
अब हम तुमहिं नगाँइ हैं, मिलि झूमक हो ।
मुसकात कहा जदुराइ, मिलि झूमक हो ॥
की हम सौं हा हा करौ, मिलि झूमक हो ।
की परहु कुँवरि के पाँइ, मिलि झूमक हो ॥
बँक बिलोकनि मन हँस्यौ, मिलि झूमक हो ।

ठगि तुमहिँ रहीँ ब्रज-बाल, मिलि झूमक हो ॥
फगुवा बहुत मँगाय दियौ, मिलि झूमक हो ।
मधु मेवा मधुर रसाल, मिलि झूमक हो ॥
कहि मोहन ब्रज-सुंदरी, मिलि झूमक हो ।
तब धाइ धरे बल घेरि, मिलि झूमक हो ॥
संक सकुच सब छाँड़ि कैँ, मिलि झूमक हो ।
चहुँ पास रहीँ मुख हेरि, मिलि झूमक हो ॥
कनक कलस भरि कुमकुमा, मिलि झूमक हो ।
भरि ढारि दिए सिर आनि, मिलि झूमक हो ॥
चंदन बंदन अरगजा, मिलि झूमक हो ।
सब छिरकति करति न कानि, मिलि झूमक हो ॥
खेलि फागु अनुराग बढ़यौ, मिलि झूमक हो ।
फिर चले जमुन-जल न्हाइ मिलि झूमक हो ॥
द्वितीया बैठि सिंहासनैँ मे, मिलि झूमक हो ।
दोउ देत रतन मनि-दान, मिलि झूमक हो ॥
इहिं बिधि हरि सँग खेलहीँ, मिलि झूमक हो ।
गन-गोकुल-नारि अनंत, मिलि झूमक हो ॥
सूर सबन कौँ सुख दियौ, मिलि झूमक हो ।
रसि रसिक राधिका-कंत, मिलि झूमक हो ॥३३॥

रागिनी काफी

मन मोहन ललना मन हरयौ हो ।

गृह-गृह, तैँ सुंदरि चलि देखन, स्री ब्रजराज कुमार ।
देखि बदन बिथकति भईँ, मौँहन सिंह द्वार ॥
डिमिडिमि, पटह ढोल, डफ, बीना, मृदँग उपँग चँग तार ।

गावत प्रभृति सहित स्रीदामा, बाढ़यौ है रँग अपार ॥
इत राधिका सहित चंद्राबलि, ललिता घोष अपार।
उत हलधर मौंहन दोऊ भैया, खेल मच्यौ दरबार ॥
रत्न-जटित पिचकारी कर लिए, छिरकति घोष कुमारि।
मदन-मोहन पिय रँग रसमाती, कछुअ न अंग सँभारि ॥
मोहन प्यारी सैन दै हलधर, पकराये जाइ।
आइन हँसत पीत पट मुख दै, आऐ आँख अँजाय ॥
बहुरि सिमिटि ब्रज-सुंदरी, मन मोहन पकरै जाइ।
करति अधर रस पान पियासी, मुरली लई छिड़ाइ ॥
परिवा सिमिटि सकल ब्रजबासी, चले जमुन जल न्हात।
वारि कुँवरि पर पट नँदरानी, दिए बिप्रन बहु दान ॥
द्वितीया पाट सिंहासन बैठे, चमर छत्र सिर ढार।
सूरज-प्रभु पर सकल देवता, बरषत सुमन अपार ॥३४॥

नँदगाँव की होली—

राग बिबावल

फागु खेलन ब्रज-सुंदरि, नंदराइ ग्रह आई।
जसुमति आदर देति, रोहिनी लेति बुलाई ॥
गावत गीत सुहावने, हँसि हँसि दे तब गारी।
दुरिए न होरी खेलिए, नँद-कुँवर गिरधारी ॥
सुनि मृदु बचन तियान के, निकसे मौंहन लाला।
मानहुँ कनक कमल ढिग आवत, मधुप रसाला ॥
ताल मृदँग, उपँग, चँग, बीना डफ राजैं।
दुँदुभि, डिमिडिमि, झालरी बिच मुरली बाजैं ॥
कनक कलस केसरि भरि, सँग लिऐं सत गोरी।
चोबा मृगमद घोरि कैं, चंदन बंदन रोरी ॥

अरगजा भरि-भरि पिचकारी, फैं टन सुरँग गुलाला।
छिरकत भरत परस्पर, हो हो बोलत ग्वाला ॥
मौंहन गोपिन छिरकत, केसू केसरि नीरा।
ए इत तकि-तकि दृगनि भरत हैं, लै मूठी जु अबीरा ॥
घिरि आई ब्रजबाल, नंदलाल गहि लीने।
एक अधर रस पीबहिं, एक अलिंगन दीने ॥
प्यारी काजर देति है, ललिता गहे कर दोऊ।
चंद्राबलि मुख मांडति, हँसत सखी सब कोऊ ॥
हरद कपोल लगाबत, उढ़बत पीत पिछोरी।
हँसत सबै दै-दै किलकारी, बोलत हो हो होरी ॥
इहि बिधि पिय संग खेलहिं, आनंद उर न समाई।
देखत देव थकित भए, पहोपन बृष्टि कराई ॥
न्हान चले जमुना सबै, सोभा बरनि न जाई।
राधा गिरधर देखि कैं, सूरदास बलि जाई ॥३५॥

गोकुल (नंदगाँव) की रंग रँगीली होली—

राग गोरी

गोकुल सकल ग्वालिनी (हो), घर घर खेलैं फाग। मनोरा झूमक हो ॥
तिन मैं राधा लाड़िली (हो), जिनको अधिक सुहाग। मनोरा०।
झुंडनि मिलि गाबति चलीं (हो), झूमक नंद दुआर,। मनोरा० ॥
आजु परब हँसि खेलिये (हो), मिलि सँग नंद-कुमार। मनोरा०। ।
रसिक राइ सुंदर बरन (हो), राधा जीवन प्रान। मनोरा० ॥
मौंहन दरस दिखावहू (हो), दुरहु तो नँद की आन। मनोरा०।
प्रगट प्रीत गोकुल भई (हो), अब कैसे करत दुराउ। मनोरा० ॥
हम न दरस बिन जीवहीं (हो), काऊ कछु करहु उपाउ। मनोरा०।
जसुमति सुत चित चुभ रही (हो), वह तुम्हरी मुसकान। मनोरा० ॥

अब न अनत रुचि ऊपजै (हो), सहज परी यह बानि। मनोराझूमक हो
दुरत स्याम धरि पाइयौ (हो), राधा भरि अँकबारि। मनोरा०
कनक-कलस केसरि भरे (हो), लै धाईं ब्रज-नारि। मनोरा०
भरहु-भरहु सखि स्याम हीं (हो), पीत पिछौरी पाग। मनोरा०
देह गेह सुधि बीसरी (हो) नँद-नँदन अनुराग। मनोरा०
छुटे केस बँद कँचुकी (हो), टूटी मोतिन माल। मनोरा०
चोबा चँदन अरगजा (हो), उड़त अबीर गुलाल। मनोरा०
कर करताल बजाबहीं (हो), छिरकति सब ब्रजनारि। मनोरा०
हँसि-हँसि हरि पर डारहीं (हो), अरुन नैन फुलबारि। मनोरा०
गगन बिमाननि सौं छयौ (हो), आनँद बरबै फूल। मनोरा०
जै-जै सब्द उचारहि (हो), सुर मुनि कौतुक भूल। मनोरा०
सूर गुपाल कृपा बिना (हो), यह रस लहै न कोइ। मनोरा०
श्री बृषभानु-कुमारिका (हो), स्याम मगन मन होइ। मनोरा०॥३६॥

राग टोडी

या गोकुल के चौहटैं रँग भीजी ग्वालिनि।
हरि-सँग खेलैं फाग, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि॥
डरति न गुरजन लाज, नैन सलोने री रँग भीजी ग्वालिनि।
मोहन के अनुराग, रँग राँची ग्वालिनि।
दुंदुभि बाजै गह गही, रँग भीजी ग्वालिनि॥
नगर कोलाहल होइ, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि।
उमह्यो मानुष घोष यौं, रँग भीजी ग्वालिनि॥
भवन रह्यो नहिं कोइ, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि।
डफ बाँसुरी सुहाबनी, रँग भीजी ग्वालिनि॥
ताल मृदंग उपँग, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि।
झांझ, झालरी, किन्नरी, रँग भीजी ग्वालिनि॥

आउझ बर मुँह चँग, नैन सलोन री रँग राँची ग्वालिनि ।
उतहिं सँग सब ग्वाल लिए, रँग भीजी ग्वालिनि ॥
सुंदर नँद-कुमारु, सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
उत स्यामा नव जोबल, रँग भीजी ग्वालिनि ॥

अँबुज लोचन चारु, नैन सलोने री रँग राची ग्वालिनि ।
टेसू के कुसुम निचोइ कैं, रँग भीजी ग्वालिनि ॥
भरे परस्पर आनि, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
चोबा चंदन अरगजा, रँग भीजी ग्वालिनि ॥

बूका बंदन साजि, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
रत्न जटित पिचकारियाँ, रँग भीजी ग्वालिनि ॥
कर लिए गोकुलनाथ, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
छिरकहिं मृगमद कुमकुमा, रँग भीजी ग्वालिनि ॥

जो राधे के साथ, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
सुरँग पीत पट रँगि रहयौ, रँग भीजी ग्वालिनि ॥
सुभग साँवरे अँग, नैन सलोने री रँग भीजी ग्वालिनि ।
नील बसन भामिन बनीं, रंग भीजी ग्वालिनि ॥

कंचुकि कुसुम सुरंग, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
अरुन नूत-पल्लव धरे, रँग भीजी ग्वालिनि ॥
कूजित कोकिल कीर, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
नृत्य करत अलि कुल मिले, रँग भीजी ग्वालिनि ॥

अति आनँद अधीर, नैन सलोने री रँग राची ग्वालिनि ।
चढ़ि विमान सुर देखहीं, रँग भीजी ग्वालिनि ॥
देह दसा बिसराइ, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ।
राधा रसिक रसज्ञ पै, रँग भीजी ग्वालिनि ॥
'सूरदास' बलि जाय, नैन सलोने री रँग राँची ग्वालिनि ॥३७॥

राग गौरी

ऊँचौ सो गोकुल नगर, जँह खेलत होरी ।।
चल सखि देखन जाहिं, पिया अपने की खोरी ।।
बाजत ताल मृदंग और किन्नरि की जोरी ।
गावत दै-दै तारि परस्पर, भामिनि भोरी ।।
बूका सुरँग अबीर, उड़ाबत भरि-भरि झोरी ।
इत गोपिन को झुंड, उतहि हरि-हलधर-जोरी ।।
नबल छबीले लाल, तनी चोली की तोरी ।
राधा चली रिसाइ, ढीठ सौं खेलै को होरी ।।
खेलत में कत मान, सुनहु बृषभान किसोरी ।
'सूर' सखी उर लाइ हँसति, भुज गहि झकझोरी ।।३८।।

राग गौरी

हो हो हो हो हो हो होरी ।
खेलत अति सुख प्रीत प्रगट भई, उत हरि इतहिं राधिका गोरी ।।
बाजत ताल मृदंग, झाँझ, डफ, बीच-बीच बाँसुरि धुनि थोरी । हो०
गावत दै-दै गारि परस्पर, उत हरि इत बृषभानु-किसोरी ।
मृगमद साख, जवादि, कुमकुमा, केसरि मिलै-मिलै मधि घोरी ।।
गोपी ग्वाल गुलाल उड़ाबत मत्त फिरैं रति-पति मनो धोरी ।। हो०
भरति रँग रति नागरि राजति, मानहुँ उँमगि बेला बल फोरी ।
छुटि गई लोक लाज कुल संका, गनति न गुरु गोपिन कौ कोरी ।
जैसे अपने मेर मते मैं, चोर भोर निरवत निसि चोरी ।। हो०
उन पट पीत किए रँग राते, इन कंचुकी पीत रँग बोरी ।
रही न मन मरजाद अधिक रुचि, सहचरि सकत गाँठि गहि जोरी ।
बरनि न जाय बचन रचना रचि, वह छबि झकझोरा झकझोरी ।

'सूरदास' सारदा-सरल मति, सो अवलोकि भूलि गई भोरी । हो० ॥
हो हो हो हो हो हो होरी ॥३६॥

राग गौरी

ग्वालिन जोबन गर्व-गहेली ।
राधे के सँग कदम सहेली ॥
कुमकुम उबटि कनक-तनु गोरी ।
अंग सुगंध चढ़ाइ किसोरी ॥
दच्छिन चीर तिपाइ कौ लँहगा ।
पहिरि बिबिध पट मोलन मँहगा ॥
कबरी कुसुम माँग मोतिअन मनि ।
केसरि-आड लिलाट भ्रुकुटि धन ॥
कज्जल रेख नैन अनियारे ।
खंजन मीन मधुप मृग हारे ॥
सुबनन कुंडल रबि सम ज्योती ।
नक बेसरि लटकैं गज मोती ॥
दसन अनार अधर बिंब जानौ ।
चिबुक चारु मूँद्यौ मधु मानौ ॥
कंठ कपोत मुक्ताबलि हार ।
जनु जुग गिर बिच सुरसरि धार ॥
कुच चकबा, मुख-ससि भ्रम भूले ।
बैठे बिछुरि दुहूँ अनुकूले ॥
कर कंकन चूरो गजदंती ।
नख मेटनि मनि मानिक-कंती ॥
नाभी हृद, तन हाटक-बरनी ।
कटि मृगराज, नितबनि करनी ॥

कदली जंघ चरन कल नूपुर।
गवन मराल करति धरती पर॥
भूषन अँग सजे सत नौरी।
गावत फाग नंद की पौरी॥
सुनि सुंदर बर बाहिर आए।
हलधर ग्वाल गुपाल बुलाए॥
इक तन नर एक तन नईं नारी।
खेल मच्यौ ब्रज के बिच भारी॥
कुमुकुम, चदन, अरगज घोरे।
हाथन पिचकारी लै दौरे॥
गोपी गोप भऐ झकझोरे।
अँचल गाँठि परस्पर जोरे॥
उड़त गुलाल अरुन भए अंबर।
कुमकुम कीच मची धरनी पर॥
चँग मृदंग बाँसुरी बाजैं।
पकरत एक, एक भरि भाजैं॥
राधा मिलि इक मंत्र उपायौ।
हलधर अपनी भीर बुलायौ॥
कान लागि स्यामा समुझायौ।
संकर्षन गहि स्यामहिं ल्यायौ॥
हरि के हाथ गहे चंद्राबलि।
कज्जल लै भाई सँझाबलि॥
ललिता लोचन आँजन लागी।
चंद्रभगा मुरली लै भागी॥
इक लै लाबति हरद कपोलनि।
इक लै पौंछति ललित पटोलनि॥

इक अवलबन इक अवलोकति ।
चुंबन दान देति इक दँपति ॥
मगन भई अप बपु न सभाँरति ।
लालन भुज अपनैं उर धारति ॥
गुरुजन खरे सबै मिलि देखैं ।
तिनकौं तरुनी तृन सम लेखैं ॥
एक कहै पिय को मुख माँडौं ।
एक कहै फगुवा लै छाँडौं ॥
बाम लियो पट पीत छुड़ाई ।
राधा राखति कृष्ण-बड़ाई ॥
सिमटे सखा छुड़ाबन आए ।
उन लियो ढेल न मोहन पाए ।
बाँसनि मार मची कर आड़े ॥
ग्वाल टिके पग एक न छाँड़े ।
बल कियौ बीच ग्वाल समुझाए ॥
मोहन मेवा मोल मँगाए ।
फगुआ लै लालम छिटकाए ॥
हँसत गुपाल ग्वाल तहँ आए ॥
तब मोहन हलधर पकराए ।
करहु तरुनि अपने मन-भाए ॥
नाक नयन मुख काजर लायौ ।
हरद कलस हलधर सिर नायौ ॥
बहुत भरे बलराम सबन गहि ।
धौलागिरि मनु यातु चली बहि ॥
न्हान चले जमुना के कूल ।
गोपी गोप भए अनकूल ॥

जो रस बाढयौ खेलत होरी।
सारद का बरनै मति मोरी॥
सूरदास' सो कैसें गावै।
लीला-सिंधु पार नहिं पावे॥४०॥

राग बिलावल

नंद-सुवन ब्रज-भावते, सँग फागु मिलि खेलौ जू।
तुम्हैं हमें यह जानवी, नव जुबति दल पेलौ जु॥
रसिक सिरोमनि साँवरे, स्रवनन सुनत उठि धाए।
बल समेत सब टेरि कें, घर-घर सखा बुलाए॥
बिबिध भाँति बाजे बजैं, ताल मृदंग उपंग।
डिमिडिमि झालरि झिल्लरी, आउझ बर मुख चंग।
उततें नव सत साजि कैं, निकसीं सब ब्रजनारी।
भुंडन आईं भूपकैं, गाबति मीठी गारी॥
केसरि कुमकुम घोरि कैं, भाजन भरि-भरि धाई।
छूटी सनमुख स्याम के, करनि कनक पिचकाईं॥
इतहीं स्याम गोपाल सँग, भरे महारस खोलैं।
चोवा मृगमद घोरि कैं, जुवति जूथ पर मेलैं॥
सोभित ग्वालनि बृंद मैं, हरि हलधर की जोरी।
इतहि चतुर चंद्रावलि, सब गुन राधा गोरी॥
सौंह किए ललिता कहै, पगन पिछौड़े डारैं।
उत नायक इत नायिका, को जीते को हारैं॥
टिके परस्पर देखियै, खेल मच्यौ अति भारी।
इत उत हटक न मानहीं, चोख परे नर नारी॥
जुबति जूथ दल पेलि कैं, छैंकि सुबल गहि लीनौ।
कंठ उपरना मेलि कै, खैंचि आपु बस कीनौ॥

सुनहु सुबल साँची कहौ, तौ छूटन भले पावौ।
कलबल बानकि बानि कैं, हलधर कौं पकरावौ॥
बहुरि सिमिटि सब सुंदरि, सकर्षन मिलि घेरे।
फैट गहीं चंद्राबलि, उलटि सखिनि तन हेरे॥
सौंधे नावौ ससि तैं, काजर लैभरि आईं।
मोहन मुरि हँसि कैं कहैं, दोऊ आँखि अजाँई॥
फेरि पुकारी राधिका, स्याम जहाँ है ठाढ़े।
और सखिन की ओर है, गहे औचकहिं गाढ़े॥
देखि सबै चहुँ ओर सौं, दौरि आईं लपटानी।
अँग-अँग बहु रँग सौं, करी बात मनमानी॥
केसरि सौं पट बोरि कै, स्त्री मुख माड़त रोरी।
ताली हाथ बजाइ कैं, बोलत हो हो होरी।
नागरि अति अनुराग सौं, मुदित बदन तन हेरै॥
सरबस बारैं वारने, अंचल हरि मन फेरै।
परम परम सुख उपज्यौ, भयौ तृषित कौ भायौ॥
मगन भईं सब सुंदरी, रस भीन्यौ हिय आयौ।
उत अग्रज इत स्याम सौं, दुहुनि दिसा रस लीन्हौ॥
× × × ×
सूरज प्रभु सँग खेलतीं, इहि बिधि गोप कुमारी।
सब ब्रज छायौ प्रेम सौं, सुख सागर गिरधारी॥४१॥

ब्रज बीथिन की होरी—

राग गौरी

ठाढ़ौ हो ब्रज-खोरी ढोटा कौन कौ।
लकुट त्रिभंगी एक पद (री), मनौ मनमथ गौन कौ॥
मोर-मुकट कछनी कसे (री), पीतांबर कटि सोभ।
नैन चलावै फेरि कै (री), निरखि होत मन लोभ॥

भौंह मरोरे मटकि कै (री), रोकत जमुना घाट।
चितै मंद मुसकाय कै (री), जिय करि लेत उचाट ॥
हँसत दसन चमकाय कै (री), चकचौंधी सी होति।
बग-पंगति नव जलद मैं (री), उर माला गज मोति ॥
पिचकारी रतनन जरी (री), ताक-तकि छिरकत अँग।
टेसू कुसुम निचोय कै (री), अरु केसरि के रँग ॥
फेंट गुलाल भराइ कै (री), डारत नैनन ताकि।
एते पर मन हरत है (री), कहा कहौं गति वाकि ॥
पुनि हा हा करि मिलत है (री), नाना रँग बनाइ।
नंद-सुवन के रूप पर (री), सूरदास बलि जाइ ॥४२॥

सखी का बचन सखी से कि वह कृष्ण रूप पर मुग्ध हो गई हैं—

राग काफी

(अरी भाई) मेरी मन हरि लियो नंद ढुटौना। चितवन में वाके कछु टौना ॥

निरखत सुंदर अँग सलोना। ऐसी छवि कहूं भई न होना ॥
काल्हि रहे जमुना तट जौना। देख्यो खोरि साँकरी तौना ॥
बोलत नहीं रहत वह मौना। दधि लै छीन खात रहयो दौना ॥
घर-घर माखन चोरत जौना। बाटनि घाटन देति है पौना ॥
खेलत फागु ग्वाल सँग छौना। मुरलि बजाइ बिसारै बत भौना।
मो देखत अवही कियौ गौना। नटबर अँग सुभ सजे सजौना ॥
त्रिभुवन में बस कियो न कौना। सूर नंद-सुत मदन लजौना ॥४३॥

राग काफी

माई मोहन मूरति साँवरो, नंद-नँदन जेहि नाँवरो।
अबहिं गए मेरे द्वारे ह्वै, कहत गहत ब्रज गाँवरो ॥

मैं जमुना जल भर घर आवति, मोहि कर लगो ताँबरो।
ग्वाल सखा सग लीने डोलत, करत आपनो भाबरो ॥
जसुमति को सुत महर ढुटौना, खेलत फागु सहावरो।
'सूर-स्याम मुरली धुनि सुनिरी, चित न रहत कहे ठावरो ॥४४॥

(अरी माई) साँवरो सलोनो अति, नँद कौ कँवरै री।
चँदन की खौरि माल, मौं हैं हैं जवरैं री ॥
कुंतल-कुटिल-छबि राजत झबरैं री।
लोचन चपल तारि, रुचिर भँबरै री ॥
मकर कुंडल गड झलमल करै री।
मनहुँ मुकुट बीच, रबि छवि वरै री ॥
नासिका परम लौंनी, बिंबाधर तरैं री।
तहाँ धरै मुरली सौं, नाना रँग झरैं री ॥
जमुना के तीर ग्वाल सँगहि बिहरै री।
अबही मैं देखि आई, बंशी बट तरैं री ॥
पिचकारी कर लिए धार अँग धरैं री।
नैनन अबीर मारै, काहु सौं न डरै री ॥
बातनि हरत मन राँग ह्वै कै ढरै री।
सूरज को प्रभु आली, चित्त तैं टरै री ॥४५॥

राग काफी

नंद के नँदन आली, मोहिं कीन्हीं बाबरी।
कहा करौं, चित्त क्यों हुँ, रह तन ठाँवरी ॥
विहरत हरि जहाँ तहाँ, बहू आवरी।
निसि हूं बासर आली, मौंकौं उरै चाँवरी ॥
जमुना जल भरन जाइँ, यहै याँवरी।

गुरु-पुरु जननि सौं, और न उपाव री ॥
काफी राग मुख गावै, मुरली बजाइ री ।
धुनि सुनि तन भूली, अति ही सुहाइ री ॥
चदन कपूर चूरि, फेंटन भराइ री ।
सौंधें भरि पिचकारी, मारत है धाइ री ॥
आतुर ह्वै चलि, और जाइ कि न जाइ री ।
चित्त न रहत ठौर, और न सुहाइ री ॥
मिलि प्रभु 'सूरज' कौं सकुच गँवाइरी ।
लाज डारि, गारि खाइ, कुल बिसराइ री ॥४६॥

रागि धना श्री

छल छबीले मोहना, (री) जाके घूँघर बारे केस ।
मोर मुकुट कुंडल लसै, (री) करि लीन्हों नटबर भेस ॥
राखे भौंह मरोरि कै, (री) सुंदर नैन बिसाल ।
निरखि हँसनि मुसकानि की, (री) अतिहि भई बिहाल ॥
कीर लजावन नासिका, (री) अधर बिंब तें लाल ।
हँसन चमक दामिनिहुँ तें, (री) स्याम हृदय बन माल ॥
चिबुक चित्त को हरन है, (री) राजत ललित कपोल ।
मारग गहि ठाढ़ो रहै, (री) बोलत मीठे बोल ॥
चंदन खौरि बिराजई, (री) स्यामल भुजा सुचारु ।
ग्वाल सखा सब संग लिए, (री) करत गुलालनि मारु ॥
इक भाजत इक भरत है, (री) कुसुम बरन रँग घोरि ।
सौंधें कीच मची भली, (री) खेलत ब्रज की खोरि ॥
सुनत चलीं सब धाइ कै, (री) देखत नद कुमार ।
फागु साँझ सी ह्वै रही, (री) उड़ि-उड़ि गगन अपार ॥

मिलि तरुनी तहाँ जाइ कै, (री) जँह खेलत फाग गोपाल।
सूर स्याम मुख देखि कै, (री) बिसरयो तन तिहिं काल ॥४७॥

राग काफी

मोहन गए, आज तुम जाहु, दाँव हम लेहिंगी हो।
लालन हमहि करे बेहाल, बहै फल देहिंगी हो॥
आजुहिं दाऊँ आपनौ लेतीं, भले गए हो भागि।
हा हा करते पाँइन परते, लेहु पितबर माँग।
बेनी छोरत हँसत सखा सँग, कहत लेहु पट जाइ।
सौंह करत हो नंद बबा की, अपनी अपति कराइ॥
जो मैं लेहुँ पितांबर अबही, कहा देहुगे मोहि।
इत उत जुबती चितवन लागीं, रहीं परस्पर जोहि॥
एक सखा हरि तिया रूप करि, पठै दियौ तिन पास।
गयौ तहाँ मिलि संग तिय के हँसति देखि पट-बास॥
मोहि देहु राखौं दुराइ कै, स्यामहिं जनि लै देहु।
लियो दुराइ गोद में राख्यौ, दाँव आपनौ लेहु॥
पीतांबर जनि देहु स्याम कौं, यह कहि चमक्यो ग्वाल।
'सूर' स्याम पट फेरत करसौं, चकित निरखि ब्रज-बाल॥४८॥

गोपी कृष्ण को युवती बना कर महर के पास ले गईं—

राग राजी टोड़ी

ग्वाल हँसे मुख हेरि कै अति बने कन्हाई।
हलधर कौं लियौ टेरि, आजु अति बने कन्हाई॥
हो-हो करि-करि कहत हैं, अति बने कन्हाई।
रहे चहुँवा घेरि, आजु अति बने कन्हाई।
ऐसेहिं चलियै नँद पैं, अति बने कन्हाई।
बल की सौंह दिबाइ, आजु अति बने कन्हाई॥

भुजा गहे तहँ लै गए, अति बने कन्हाई।
वह छबि बरनि न जाइ, आजु अति बने कन्हाई॥
इत जुबती-मन हरत हैं, अति बने कन्हाई।
उतहिं चले ह्वै भोर, आजु अति बने कन्हाई॥
और सखी आईं तहाँ, अति बने कन्हाई।
करि-करि नैन चकोर, आजु अति बने कन्हाई॥
महर हँसे छबि देखि कैं, अति बने कन्हाई॥
सुनि जननी तहँ आइ, आजु अति बने कन्हाई।
हँसि लीन्हौं उर लाइ कै, अति बने कन्हाई।
अ नँद उर न समाइ, आजु अति बने कन्हाई॥
कछुक खीझि कछु हँसि कह्यौ, अति बने कन्हाई।
किन यह कीन्हौं हाल, आजु अति बने कन्हाई॥
लेति बलैंया वारि कैं, अति बने कन्हाई।
ये ऐसियै ब्रजबाल, आजु अति बने कन्हाई॥
रँग-रँग पहिरावनि दई, अति बने कन्हाई।
जुवतिनि महर बुलाइ, आजु अति बने कन्हाई॥
यह सुख प्रभु कौ देखि कैं, अति बने कन्हाई।
सूरदास बलि जाइ, आजु अति बने कन्हाई॥४६॥

बलदाऊ पकड़े गये। कृष्ण का स्त्री वेष बनाया गया—

राग कल्याण

ब्रज राज लड़ैतो गाइयै, (मन) मोहन जाको नाउँ।
खेलत फाग सुहावनी, (रँग) भीजि रह्यौ सब गाउँ॥
ताल पखाबज बाजहीं, (हो) डफ सहनाइ भेरि।
स्रवन सुनत सब सुंदरी, (हो) झुंडन आईं घेरि॥
इतहिं गोप सब राज हीं, (हो) उत सब गोकुल नारि।

अति मीठी मन भावती, (हो) देहिं परस्पर गारि ॥
चोबा चंदन छिरकहीं, (हो) उड़त अबीर गुलाल ।
मुदित परस्पर खेलहीं, (हो) हो हो बोलत ग्वाल ॥
सब गोपिन हलधर पकरि, (हो) छाँडे पाँइ लगाइ ।
दाऊ आजु भले बने, (हो) आए आँखि अँजाइ ॥
बहुरि सिमिट ब्रज सुंदरी, (हो) मिलि पकरे गोकुल नाथ ।
नव कुमकुम मुख माँड़ि कै, (बहु) रचि बैनी गुँथी माथ ॥
तब नँदरानी बीच कियो, (बहु) मेवा दिए मँगाइ ।
पट भूषन दियौ सबन कौं, सूरदास बलि जाइ ॥५०॥

चौपई वर्णन—

राग गूजरी

ब्रज की बीथिनि-बीथिनि डोलत ।
मदन गुपाल सखा सँग लीन्हे, हो हो हो हो बोलत ॥
ताल मृदग बीन डफ बाँसुरि, बाजत गावत गीत ।
पहिरे बसन अनेक बरन तनु, नील अरुन सित पीत ॥
सुनि सब नारि निकसि ठाढ़ी भईं, अपने-अपने द्वार ।
नवसत सजे प्रफुल्लित आनन, जनु कुमुदिनी कुमारि ॥
चपल नैन अति चतुर चाह तन, जनु फुलवारी लाईं ।
देखत हीं नंद-नंद परम सुख, मिलत मधुप लौं धाईं ।
राखति गहि भुजबल चहुँ दिसि जुरि, अतहि प्रेम अकुलात ।
मानहुँ कमल कोस अभिअंतर, भँवर भ्रमत बिनु प्रात ॥
छाँड़ति भरि भायौ अपनौं करि, राजत अँग-विभाग ।
मानहुँ उड़ि जू चले हैं अलि कुल, आस्रित अँग-पराग ॥
अंतर कछू न रह्यो तिसि औसर, अति आनंद प्रमाद ।
मानहु प्रेम-समुद्र सूर बल, उमँगि तजी मरजाद ॥५१॥

ब्रज की गोरी में —

राग सारंग

हो हो हो हो होरी, करत फिरत ब्रज खोरी।
मोहन हलधर जोरी, सुवन नँद कौरी॥
ग्वाल सखा सँग ढोरी, लिए अबीर कर झोरी,
मारि भजत जेहिं झोरी, दाँव लेत दौरी॥
एक गावति है धमारि, इक-एकन देति गारि,
दई सबन लाज डारि, बाल पुरुष तोरी॥
माँधे अरगजा कीच, जहाँ तहाँ गलिन बीच,
एक-एक ऊँच नीच, करत रंग झोरी॥
एक उघरति, एक नृत्यति, एक तान लेति उपज,
एक दै कर ताल हरषि, गावत है गोरी॥
सूररास-प्रभु कों सुख निरखि हरष ब्रज-ललना,
सुर-ललना सुरनि सहित बिथकित भईं बौरी॥५२॥

ब्रज में —

राग गौरी

गारी होरी देत दिवावत। ब्रज में फिरत गोप गन गावत॥
दूध दही के माते डोलैं। काहे न हो हो हो बोलैं॥
बगलन में दाबे पिचकारी। बाँधन फेटैं पाग सँवारी॥
रुकि गए बाटनि नारे पेड़े। नब केसरि के माँट उलेड़े॥
छज्जन तैं छूटति पिचकारी। रँगि गईं बाखरि, महल अटारी॥
नाना रंग गए रँगि बागे। बलदाऊ इत उत ह्वै भागे॥
न्हान चले जमुना के तीर। मन मोहन हलधर दोऊ बीर॥
सूरदास प्रभु सब सुखदायक। दुर्लभ रूप देखिबे लायक॥५३॥

गोकुल की होरी—

रागनी हटी

हरि सँग खेलत फागु चलीं।
चोबा चदन अगरु अरगजा, छिरकत नगर गलीं॥
राती पीरी अँगिया पहिरैं, नव तन झूमक सारी।
मुख तमोर नैनन भरि काजर, देहिं भावती गारी॥
रितु बसंत आगम रति-नायक, जोबन-भार-भरीं।
देखत रूप मदन मोहन को, नँद दुवार खरीं॥
कहि न जाय गोकुल की महिमा, घर-घर बीथिन माँहीं।
सूरदास सो क्यों करि बरने, तो मुख तिहुँ पुरनाँहीं॥५४॥

ब्रज बीथिन में होली का वर्णन—

राग धनाश्री

होरी खेलत ब्रज खोरिन मैं, ब्रज बाला बनि-बनि बनवारी।
डफ की धुनि सुनि बिकल भईं सब, कोऊ न रहति घर घूँघटवारी॥
जाहि अबीर देत आँखिन मैं, ताही कौं छिरकत पिचकारी।
सौंधै तेल अबीर अरगजा, तैसी जरद केसर चटकारी॥
उड़त गुलाल लाल भए बादर, रँगि गए सिगरे अटा अटारी।
सूरदास वारी छवि ऊपर, कल न परत छिनु बिनु गिरधारी॥५५॥

राग नट नारायण

खेलत स्याम ग्वालनि सँग।
एक गावत, एक नाचत, इक करत बहुत बहु रँग॥
बीन मुरज उपंग मुरली, झाँझ झालरि ताल।
पढ़त होरी बोलि गारी, निरखि कै ब्रजबाल॥

कनक कलसनि घोरि केसरि, कर लिए ब्रज-नारि।
जबहिं आवत देखि तरुनी, भजत दै किलकारि॥
दुरि रही इक खोरि ललिता, उतहिं आवत स्याम।
धरे भरि अँकवारि औचक, धाय आईं बाम॥
बहुत ढीठो ह्वै रहे हो, जानबी अब आज।
राधिका दुरि हँसति ठाढ़ी, निरख पिय मुख लाज॥
लियो काहू मुरलि करतैं, कोउ गह्यो पट पीत।
सीस बेनी गूँथि, लोचन आँजि करी अनीत॥
गए कर तैं छिटकि मोहन, नारि सब पछतात।
सीस धुनि कर मीजि बोलति, भली दै गए मात॥
दाउँ हम नहिं लेन पायौ, बसन लेती लाल।
सूर-प्रभु कहाँ जाउगे अब, हम परीं इहिं ख्याल॥५६॥

गोपियों ने बलराम का रूप धारण कर कृष्ण को पकड़ लिया —

राग गौरी

चकित भईं हरि की चतुराई। हमहिं छली इन कुँवर कन्हाई॥
कहा ठगोरी देखत लाई। घिरवति हैं कहि भली बनाई॥
एक सखी हलधर-बपु काछो। चली नील पट औढ़े आछौ॥
स्याम मिलन ताकौं तहँ आऐ। अग्रज जानि चले अतुराए॥
मिले साँकरी ब्रज की खोरी। टूकी रहीं जहाँ तहँ गोरी॥
गह्यो धाई भुज दोऊ लपटानी। दौरि परीं सब सखी सयानी॥
निरखि-निरखि तरुनी मुसकानी। एक निलज, इक रही लजानी॥
कहा रही करि सकुच दिवानी। अब इनकी जनि राखौ कानी॥
गारि नारि सब देहिं सुहानी। नंद महरि लौं जाति बखानी॥
उतरयौ सूर स्याम मुख पानी। गईं लिवाइ जँह राधा रानी॥५७॥

राग नट नारायण

हो हो हो हो लै लैं बोलैं। गोरस केरे माते डोलैं॥
ब्रज के लिरिकन सँग लिए जो लैं। घर-घर केरे फरके खोलैं॥
गोपी ग्वाल मिले इक-सारी। बचत नहीं बिनु दीने गारी॥
आन अचानक अँखियाँ मीचैं। चंदन बंदन ऊपर सींचैं॥
जो कोइ जाइ रहै घर वैसै। करि बरिया आइ तहाँऊँ पैसै।
हाथनि लिए कनक पिचकारी। तकि-तकि छिरकत मोहन प्यारी॥
कुमकुम-कीच मची अति भारी। उड़त अबीरनि रँगी अटारी॥
अति आनंद भरे सब गावैं। नाना गति कौतुक उपजावैं॥
मोहन गहि आने मिलि धाइ। फगुवा हमको देहु मँगाइ॥
भागत कुसुम हार उर टूटे। पीतांबर गहने दै छूटे॥
सोभा सिंधु बढ़यौ अति भारी। छबि पर कोटि काम बलिहारी॥
सूरदास प्रभु की-रस होरी। बरनौं कँह लगि मो मति थोरी॥५८॥

पनघट पै होली की छेड़छाड़—

राग काफी

लालन प्रगट भए गुन आजु, त्रिभंगी लालन ऐसे हौ।
रोकत घाट बाट गृह बनहू, निबहति नहिं कोउ नारि।
भली नहीं यह करत साँवरे, हम दै हैं अब गारि॥
फागुन मैं तो लखत न कोऊ, फबति अचगरी भारि।
दिन दस गए, दिना दस औरे, लेहु साध सब सारि॥
पिचकारी मोपैं जनि छिरकौ, झरकि उठी मुसकाइ।
सासु ननँद मोकौं घर बैरिन, तिनहि कहौं कहा जाइ॥
हा हा करि कहि नंद-दोहाई, कहा परी यह बानि।
तासौं भिरहु तुमहिं जो लायक, इह हेरनि मुसकानि॥

अनलायक हम हैं, की तुम हौ, कहौ न बात उघारि।
तुमहू नबल, नबल हमहू हैं, बड़ी चतुर हौ ग्वारि॥
यह कहि स्याम हँसे, बाला हँसी, मन ही मन दोऊ जानी।
सूरदास प्रभु गुनन भरे हौं, भरन देहु अब पानी॥ ५६॥

राग गौरी

घर घर ते सुनि गोपी हरि-पुख देखन आईं।
निरखि स्याम ब्रज नारि, हरषि सेब निकट बुलाईं॥
सुनति नारि मुसकाइ, बाँस लीन्हें कर धाईं।
ग्वालनि केरी हाथ, गारि दै तियनि सुनाई॥
सीला नामक ग्वालि, अचानक गहे कन्हाई।
सखिन बोलावति टेरि, दौरि आवहु री भाई॥
एक सुनत गई धाइ, बीस तीसक तहाँ आई।
टूटि परीं चहूँपास, घेरि लीन्हों बल-भाई॥
इक पट लीन्हों छीनि, मुरलिया लई छिड़ाई।
लोचन काजर आँजि, भाँति सौं गारी गाई॥
जबहिं स्याम अकुलात, गहति गाढ़े उर लाई।
चंद्रावलि सों कह्यौ, गूँथि कच सौंह दिवाई।
हा हा करिए लाल, कुँवरि के पाँय छुवाई।
वह सुख देखत नैन, सूर जन बलि-बलि जाई॥६०॥

गोपियों द्वारा विनती—

राग होरी

हम तुमसौं करैं, जनि आँखिन भरौ गुलाल।
सह्यौ परत हम पै नहीं, तेरौ निपट अनौखौ ख्याल॥

दरसन तैं अंतर परै, हो करहु अबीर-अबीर।
तुमहिं कहै कैसे जियैं, जहँ मीन न पावैं नीर॥
स्याम तुम्हारे रँग रँगी हैं, और न रँग सुहाइ।
नित ही होरी खेलियै हो, तुम सँग जादवराइ॥
यह फगुवा हम पावहीं, हो चितवनि मृदु मुसकान।
सूर स्याम ऐसै करौ जू, तुम हौ जीवन-प्रान॥६१॥

राग होरी

मेरी अँखियाँ मोहन जनि भरौ।
जो तुम होरी खेलत हो जू, नद बबा की सौंह करौ॥
हाथन लिए कनक पिचकारी, अबीरन हो झोरी भरौ।
मेरी ओर जनि डारौ मोहन, बृषभानु बबा कौ डरु करो॥
अँचरा मेरो जनि गहौ लालन, देखत हौ दाऊ खरौ।
बैया गहत मेरी चोली दरक गई, अरु टूट्यौ मौतिन छरौ॥
खेलिये फागु सुहावनौ मोहन, तन मन मोद बढ़ौ करौ।
सूरदास स्वामी तुम्हरे मिलन कौं, या ब्रज में बिहरत फिरैं॥६२॥

राग कल्यागु

खेलत हरि ग्वाल-संग फागु-रंग भारी।
इक मारत इक तारत, इक भाजत इक गाजत, इक धावत
इक पावत, इक आवत मारी॥
इक हरखत इक लरखत, इक परखत घातहिं, लोचनन
गुलाल डारि, सौंधैं ढरकावैं।
इक फिरत संग संग, इक इक न्यारे बिहरत, डरत दाँव
दीवे कौं, वै ज्यौं नहिं पावै॥
इक गावत इक भावत, इक नाचत इक राँचत, इक कर
मृदंग ताल, गति-जति उपजावै।

इक बीना, इक किन्नरि, इक मुरली इक उपंग, इक
तुंबुर इक रबाब, भाँति सौं दुरावै ॥
इक पटह, इक गोमुख, इक आउझ, इक झल्लरि, इक अमृत
कुंडली, इक डफ कर धारै ।
सूरज-प्रभु बल मोहन, संग सखा बहु गोहन, खेलत
बृषभानु-पौरि, लिए जात टारे ॥६३॥

कृष्ण पकड़कर राधा के पास लाये गए—

राग श्री हठी

(ब्रज जुबती मिलि) नागरि, राधा पै मोहन लै आई ।
लोचन आँजि, भाल बै दी दै, पुनि-पुनि पाँइ पराईं ॥
बैनी गूँथि, माँग सिर पारी, बधू-बधू कहि गाई ।
प्यारी हँसति देखि मोहन-मुख, जुबती बने बनाई ॥
स्याम-अंग कुसुमी नई सारी, अपने कर पहिराई ।
कोऊ भुज गहति, कहति कछु कोऊ, कोऊ गहि चिबुक उठाई ॥
एक अधर गहि सुभग अँगुरयनि, बोलत नहीं कन्हाई ।
नीलांबर गहि खूँट चूनरी, हँसि-हँसि गाँठि जुराई ॥
जुबती हँसति देति कर तारी, भई स्याम मन-भाई ।
कनक कलस अरगजा घोरि कैं, हरि कै सिर ढरकाई ॥
नंद सुनत हँसि महरि पठाई, जसुमति धाई आई ।
पट मेवा दै स्याम छुड़ायौ, सूरदास बलि जाई ॥६४॥

होली में छद्म-वर्णन—

राग बिलावल

खेलत मोहन फाग भरे रँग । डोलत सखा समूह लिए सँग ॥
नंदराइ सौं बिनती कीनी । स्याम एक की आज्ञा लीनी ॥

अगनित तब पिचकारि गढ़ाईं। कंचन रतन बबा पै पाई ॥
मन सहसक केसरि लै दीन्हो। अमित सुगंध अरगजा लीन्हौ ॥
गोपिन बैठि ओसरे कीन्हे। गाय चरावन को सँग लीन्हे ॥
तबहिं अनंत सखा गन साजे। सकल संवारि सँग लिए बाजे ॥
घर घर ध्वजा पताका बानी। तोरन बारन बाँसौं ठानी ॥
बरन पचामक अधिर सँवारे। बीथिनि छिरकि नहाँ बिस्तारे ॥
मोहन चरन धरत तँह आवैं। द्वारैं जुरि जुवति मिलि गावैं ॥
निरखि मदन कौं सब मिलि धावैं। मोहन इतनैं सखा सिखावैं ॥
नाँहिं गात, बिस्तर नहिं राखैं। भरि नीके करि मुख कछु भाखैं ॥
बैठे जहाँ गोप सब राजैं। आवत देखि सबै उठि भाजैं ॥
मोहन पै कोऊ जान न पावै। मद्दा मत्त गज बर ज्यौं धावै ॥
सब मिलि बोलत हो हो होरी। छिरकत चदन बंदन रोरी ॥
एक द्योस गोपी जुरि आईं। घर ही में घेरे हरि जाईं ॥
इक भीतर इक रही दुआरैं। एक जाइ लागी खिरकारैं ॥
एक इहाँ चहुँ दिसि तें घेरे। एक पैठि मदिरमैं हेरे ॥
एक लिए कर कमल बिराजै। पसरै किरनि कोटि ससि भ्राजै ॥
एक लिए सिर सौंधे गागरि। फैंट अबीर भरे बहु नागरि ॥
सारी सुभग काछ सब दिये। पाटबर गाती सब हिये ॥
एकनि जाइ दुरे हरि पाए। सैन देइ राधिका बताए ॥
करति कुलाहल हरि गहि लाईं। फलीं ज्यौं निधनी धन पाई ॥
एक गहे कर कर दोऊ हरि के। हलधर देखि उतहिं कौं सरके ॥
केसरि अरु गुलाल मुख लायौ। पूरन चंद उदय कर आयौ ॥
पीत-अरुन रँग नाए सिर तैं। चली धातु मनु साँवरि गिरतैं ॥
एक भरे पिचकारी ताके। देत स्रवन मैं नँदलाला के ॥
ब्रज-जन सकल सुधारस पीते। ऐसी भाँति पहर द्वै बीते ॥
देखी निकट राधिका प्यारी। तब हरि लीला और बिचारी ॥

तब हरि जाइ दुरे उपवन मैं । चली नाइका कुंज-सदन मैं ॥
करत कुलाहल ब्रज की नारी । देखत चढ़े कदंब बिहारी ॥
कबहुँक मुरली मधुर बजावैं । स्रवन सुनत जित ही तित धावैं ॥
जब हरि जानी निकटहि आईं । डर तैं हरि तब रहे लुकाई ॥

कुंज कुंज कोकिल ज्यौं टेरैं । स्रवन नाद भृंगी ज्यौं हेरैं ॥
कबहूँ फिरि आपस मैं खेलति । सकल सुगंध परस्पर मेलति ॥
झुकै बचन कहनौ बिन पाए । कहति कछू राधिका लगाए ॥
करनि भाजि बर-बन भ्रम जैसैं । जाइ दुलति बन-बन मे तैसैं ॥

तब हरि भेष धरयौ जुबती को । सुंदर परम भाव तौ जी को ॥
सारी कंचुकि केसरि टीकौ । करि सिंगार सब छलन हीकौ ॥
कर राजति कंदुक नवलासी । छूटी दामिनि ईषदु हाँसी ॥
सकल भूमि बन सोभा पाई । सुंदरता उमँगी न समाई ॥

ब्रजनारी ता सोभा सौंही । रहीं ठगी सी रूप-बिमोही ॥
एक कहति हरि के से नैना । एक कहति वैसेई बैना ॥
बूझति एक कौन की नारी । बिधि की सृष्टि नहीं तू न्यारी ॥
तब हरि कहति सुनहु ब्रज बाला । बोलति हँसि-हँसि बचन रसाला ॥

हम तुम मिलि खेलहिं सब जानति । राधा आली मोहि पहिचानति ॥
हौं हूँ सँग तिहारे खेली । जानत होहु अजान सहेली ॥
अबहीं कीरति महरि पठाई । राधा इकली खेलन आई ॥
अब इक बात कहति हौं जीकी । हौं जानति हौं छल हरि पीकी ॥

सघन बिपिन ऐसैं कहँ पावहु । सब मिलि एक सँग जनि धावहु ॥
सुनत सोर कत रहिहैं नेरैं । कोटि करौ पावहु नहिं हेरैं ॥
द्वै-द्वै न्यारी-न्यारी डोलहु । तनक मूँदि कर मुख जनि बोलहु ॥
जाइ अचानक ही गहि ल्यावहु । सखी एक ज्यौं त्यौं कर पावहु ॥

राधा कौं भुज गहि कैं लीन्ही । ऐसै सब कौं द्वै-द्वै कीन्ही ॥
मौन किए प्रबेस कियौ बन मैं । हरि को रूप राखि निज मन मैं ॥
और सखी सब खोजति कुंजन । राधा हरि बिहरति सुख पुंजन ॥
राधा आवति देखि अकेली । फिरी बहुरि सब बैठि सकेली ॥
तब बूझति बृषभानु-दुलारी । सखी सँग की कहाँ बिसारी ॥
अति गह्वरि में जाइ परीं हम । सूर्य न सूझत भयो निसा तम ॥
ता ठाहर तैं हौं भई न्यारी । फिरि आई डरपी हिय भारी ॥
पुहुप वाटिका हौं फिर आई । मुकुट दीठि तँह हीं इत धाई ॥
ता ठाहर जो ठाड़े पावहिं । चलौ जाइ धाई गहि लावहिं ॥
नारी बात सुनत ही धाईं । घेरि लिये कोकिल सुरगाईं ॥
जाहु कहाँ अब अकेले पाऐ । सकल सुगंध सीस तैं नाऐ ॥
एक रूप माधुरी निहारिहि । एक कटाच्छ नैन-सर मारहि ॥
एक सुमन लै ग्रथित माला । सोभित सुंदर हृदय बिसाला ॥
खेलत आए पुलिन सुहाए । बैठे तहँ मंडली बनाऐ ॥
मोहन नव ससि मध्य बिराजै । देखि सूर कोटिक छबि छाजै ॥६५॥

राधा कृष्ण और कृष्ण राधा बनकर गये—

राग होरी

स्यामा स्याम सौं आजु, बृंदाबन खेलति फाग नई ।
नंद-नँदन कौं राधे कीन्हौं, माधव आपु भई ॥
सखा सखी ह्वै सखी सखा ह्वै, जुरि नँद भवन गईं ।
उलटे रूप देखि जसुमति की, गति मति भूल गईं ॥
गोरे स्याम साँवरी स्यामा, दोऊ मूरति चितई ।
सूर स्याम को बदन बिलोकत उघरि गई कलई ॥६६॥[1]

[1]इसका ब्रज में दूसरा यह पाठ मिलता है (ब्रज के प्रसिद्ध गायक श्री लक्ष्मण जी चतुर्वेदी के सौजन्य से)

होली में गेंदुक चलाने का वर्णनः यमुना तीर—

राग होरी

पिय प्यारी खेलैं जमुन तीर। भरि केसरि कुम कुम और अबीर।
घसि मृगमद चंदन अरु गुलाल। रँग भीने अरगज वस्त्र माल॥
कूजत कोकिल कलहंस मोर। ललितादिक स्यामा एक कोर॥
बृंदादिक मोहन लई जोर। बाजै ताल मृदंग रबाब घोर॥
प्रभु हँसि कै गेंदुक दई चलाइ। मुख पट दै राधा गई बचाइ॥
ललिता पट मोहन गह्यौ धाइ। पीतांबर मुरली लई छिड़ाइ॥
हौं सपथ करौं छाँड़ौं न तोहि। स्यामा जू आज्ञा देहु मोहिं॥
इक निज सहचरि आइ बसीठि। सुनरी ललिता तू भई डीठि॥
पट छाँड़ि दियौ तब नव किसोर। छबि रीझि सूर तृन दियौ तोर।६७॥

राग सारंग

होरी खेलत जमुना के तट, कुंजन तट बनवारी।
इति सखियनि कौं मँडल जोरे, स्री बृषभानु दुलारी॥

स्यामा स्याम सौं आजु, होरी खेलत नई।
नंद-नँदन कौं राधे बनायौ, माधव आप भई।
सखा सखी भए सखी सखा भईं, जसुमत भवन गईं।
बाजत ताल मृदंग झांझ डफ, नाचत ताता थेई।
गोरे स्याम साँवरी राधे, यह मूरति चितई॥
उल्टयौ रूप देख रानी जसुमति, तन सुधि बिसर गई।
फगुआ मँगाइ दियौ रानी जसुमति, कंचन रतन मई॥
सूर-स्याम को बदन बिलोकति उघरि गई कलई।

होड़ा-होड़ी होत परस्पर, देत हैं आनँद-गारी ।
भरे गुलाल कुमकुमा केसर, कर कंचन पिचकारी ॥
बाजत बीन बाँसुरी महुवरि, किन्नरि और मुँहचँग ।
अमृत कुंडली औ मुरमंडल, आउझ सरस उपंग ॥
ताल मृदंग झाँझ डफ बाजै, सुर की उठत तरंग ।
हँसत-हँसावत करत कुतूहल, छिरकत केसरि रंग ॥
तब मोहन सब सखा बुलाए, मिलि कै मतौ बतायौ ।
रे भैया तुम चौकस रहियौ, जिनि कोऊ होहु गहायौ ॥
जो काहू कूँ पकरि पाँड है, करि है मन कौ भायौ ।
तातैं सावधान ह्वै रहियौ. मैं तुमकौं समुझायौ ॥
राधा गोरी नवल किसोरी, इनहु मतौ जु कीन्हौ ।
नैंसुक बात लगाइ साँवरे, पाछे तें गहि लीन्हौ ।
आईं सिमिट सकल ब्रज-सुंदरि, मोहन पकरे जब हीं ।
हममाँगत ही यह बिधिना पै, दाँव पाइ हैं कबहीं ॥
तब तुम चीर हरे जु हमारे, हा हा खाई सब हीं ।
अब हम बसन हीन कर लैहैं, हा हा करिहौ अब हीं ॥
एक सखी कहै बदन उठावहु, हमहुँ देखन पावैं ।
स्री मुख-कमल-नैन मेरे मधुकर, तनकी तृषा बुझावैं ॥
एक सखी कहै आँखि आँजि कै, माथै बेंदा लावैं ।
एक सखी कहै इनहिं नचावहु, हम सब ताल बजावैं ॥
एक सखी आई पीछे तें, मोर पच्छ गहि लीन्यौ ।
एक सखी त्यौं आइ अचानक, पीतांबर धरि छीन्यौ ॥
एकै आँखि आँजि मुख माँड्यौ, ऊपर गुलचा दीन्यौ ।
मानत कौन फागु में प्रभुता, मन भायौ सौ कीन्यौ ॥
एक कहै बोलौ बल भैया, तुमकौं आइ छुड़ावै ।
सखाएक पठवी कोउ घर कौं, जसुमति कौं लै आवैं ॥

जानत हौ कलबल कैं छूटै, सो नहिं छूटन पावै।
राधा जू सों करौ बीनती, वै बलि तुमहिं छुड़ावैं ।।
दूरहि तैं देख्यौ बल आवत, सखी बहुत उठि धाईं ।
कलबल छल जैसें तैसें करि, उनहूँ कौं गहि ल्याईं ।।
किए आन ठाड़े इक ठौरहि, बल मोहन दोऊ भाई ।
उनहुँ की आँखि आँजि मुख माँड्यौ, राधा सैन बुझाई ।।
देखि-देखि ब्रह्मा सिव नारद, मन ही मन पछताहीं ।
बड़े भाग है स्त्री गोकुल के, हम मुख कहे न जाहीं ।।
जाके काज ध्यान धर देख्यौ, ध्यान हुँ आवत नाहीं ।
वे अब देखे बनितनि आगैं, ठाड़े जोरे बाहीं ।।
हँसि-हँसि कहत सु मोहन प्रीतम, मन मानौ सुख कीजै ।
छाँड़ि देहु गृह जाहु आपने, पीतांबर मोहि दीजै ।।
कर जोरे गिरबर धर ठाड़े, अग्या हमकौं दीजै ।
जो कछु इच्छा होहि तिहारी, सो सब फगुआ लीजै ।।
तब गिरबर धर सखा बुलाए, फगुआ बहुत मँगायौ ।
जोइ-जोइ बसन जाहि मन मान्यौ, सोइ-सोइ तिहिं पहिरायौ ।।
राधा-मोहन जुग-जुग जीवौ, सब कोउ भलौ मनायौ ।
बाढ़ौ बंस नंद बाबा कौ, सूरदास जस गायौ ।। ६८ ।।

वृंदावन की होरी—

राग बसंत

बाल गोपाल लाल सौं खेलैं, मुख मूँदैं मन खोलैं ।
यौं पट ओट बदन बिराजत, मानौं बिधु बादर कै ओलैं ।।
चिकने चिकुर छुटे बैनी तैं, भीजि बसन मैं डोलैं ।
मानौं कुटुम सहित कालिंदी, काली करत किलोलैं ।।
बेसरि कौ मुक्ता इम राजत, अति छबि देत अमोलैं ।

मानौं नूत मंजरी लैकैं, कीर करत मलगोलैं ॥
भृकुटि कुटिल कुरंग चपल चख, कछू बंद कछु खोलैं।
मानौं तिलक पारधी ढूक्यौ, चाप चढ़ायो सो लैं ॥
हरषत बरषत मन मोहन सँग, सौंधैं रंग अतोलैं।
मुरि दै चलीं गवाँरी गारी, हो हो हो कहि बोलैं ॥
खेलत फागु चले बंसीवट, इंद्र थकित भयौ भोलैं।
सूरदास प्रभु तन मन वारौं, बृंदावन की कोलैं ॥६९॥

होलिका बिलास—

राग बिलावल

सौंधे की उठत झकोर मोहन रंग भरे।
चोवा चंदन अगर कुमकुमा, सोहैं माँट भरे ॥
रतन जटित पिचकारी कर गहे, बालक बृंद खरे।
भरि पिचकारी प्रेम सौं मारी, मेरे प्रान हरे ॥
सब सखियन मिलि मारग रोक्यो, जब मोहन पकरे।
अंजन आँजि दियो आँखिन मैं, हा हा करि उबरे ॥
फगुवा बहुत मँगाइ साँवरे, कर जोरे अरज करे।
धनि-धनि सूर भाग ताके प्रभु, जाके सँग बिहरे ॥ ७० ॥

बृंदावन की होली—

राग काफी

नंद-नँदन बृषभानु-किसोरी, मोहन राधा खेलत होरी।
स्री बृंदाबन अतिहि उजागर, बरन-बरन नव दंपति भोरी ॥
एकनि कर है अगर कुमकुमा, एकनि कर केसरि लै घोरी।
एक अर्थ सौं भाव दिखावति, नावत तरुन, बाल बृध भोरी ॥
स्यामा उतहि सकल बृज बनिता, इतहि स्याम रसरूप लहौ री।

कंचन की पिचकारी छूटति, छिरकत ज्यौं सचु पावैं गोरी ॥
अतिहिं ग्वाल दधि गोरस माते, गारी देत कहौ न करौ री ।
करत दुहाई नंदराइ की, लूजु गयो कलबल छलजोरी ॥
झुंडनि जोरि रही चन्द्राबलि, गोकुल मैं कछु खेल मच्यो री ।
सूरदास प्रभु फगुवा दीजै, चिरजीवो राधा बर जोरी ॥ ७१ ॥

राग नंदन

बृंदाबन परम सुहावनौ राधा खेलैं फाग, बारे कन्हैया ।
मोहन बँसिया बजावै नदि जमुना कै तीर, बारे कन्हैया ॥
स्रवन सुनय सब धावहीं झोरी भरी अबीर, बारे कन्हैया ।
उर मोतिनि की माल री पहिरैं रातुल चीर, बारे कन्हैया ।
ब्रज की बधू सब सुंदरी दूंजै परी अबीर, बारे कन्हैया ॥
साँकरि खोरि या बिरज की भई चोबा की हील, बारे कन्हैया!!
बृंदाबन की कुंज मैं भई दोऊ मिलि भीर, बारे कन्हैया ।
इहिं बिधि होरी खेलहीं गावैं निसदिन सूर, बारे कन्हैया ॥७३॥

राग कान्हरो ।

बृंदाबन में स्याम बाम सँग, मधुरी बेनु बजावैं ।
सब ही के मन हुलास, मिलि राग कान्हरो गावैं ॥
चोबा चंदन और अरगजा, अबिर गुलाल उड़ावैं ।
केसू कुंकुम की पिचकारी, भरि-भरि छिरकैं छिरकावैं ॥
हरषि-हरषि के सुर बिमान तैं, पुहुप बृष्टि बरसावैं ।
सूरदास प्रभु रिषि मुनि जेते, तेते देखन आवैं ॥७३॥

❀ फूलडोल ❀

(दोलोत्सव)

राग जैजैवंती

माई फूले फूले फूलत, राधा कृस्न हैं झूलत, सरस रस ही फूल डोल।
फूले फूलनि जोरति, फूले निमिष न मोरति, संतन हित ही फूल डोल॥
फूल फटिक खंभ रचित, कंचन ही फूल खचित, सरस रसही फूल डोल।
पटुली नव रतन पचित, हीरा लाल मोती जटित, संतन हित ही फूल डोल॥
मरुवा मयारि ढरोल, झूमका प्रबाल ओल, सरस रस ही फूल डोल।
डाँड़ि हेम चारु, गोल, चुनिन फूल लगे लोल, संतन हितही फूल डोल॥
फूले बृंदाबन अनुकूल, सघनलता फूले फूल, सरस रस ही फूल डोल।
फूले स्री जमुन-कूल, बिबिध रंग फूले फूल, संतन हित ही फूल डोल॥
फूले चंपक चमेलि, फूलि लवंग लता बेलि, सरस रस ही फूल डोल।
फूली निवारी ऐल, मौंगरौ सेवति सुवेलि, संतन हित फूल डोल।
तहाँ मौरे अंब फूलें, निबुआ जहाँ सदाँ फर फूले, सरस रसही फल डोल।
तहाँ कमल केवरा फूले, केतकी कनेर फूले, संतन हित ही फूल डोल॥
फूली मधु मालती रेलि, फूले मधुप करत केलि, सरस रस ही फूल डोल।
फूले फले आनँद बेलि, फूले पिवत सुरस पेलि, संतन हित ही फूल डोल
फूलन के सौंधे बार, मानौं मधुप-छपि अपार, सरस रस ही फूल डोल।
फूलन के हिये हैं हार, सुरसरि मनु धरे धार, संतन हित ही फूल डोल॥
माथे मुकुट रचित फूल, फलन के मीस फूल, सरस रस ही फूल डोल।
फूलन की बेंदी लिलार, फूलनि नख सिख सिंगार, संतन हित ही फूल डोल॥

फूले हैं ग्वाल बाल, फूले नंदजू के लाल, सरस रस ही फूल डोल।
फूली तरुनि बृद्धबाल, फूली करति बिबिध ख्याल, संतन हित ही फूल डोल ॥
फूली रोहनि जसुदा रानि, फूली देखि राजधानि, सरस रस ही फूल डोल।
नँद सँकर्षन सुख मान, फूले सब गोकुल प्रानि, संतन हित ही फूल डोल।
फूले ही बजावैं डफ ताल मृदंग, बजै महुवरि मुँह-चँग, सरस रस ही फूल डोल।
फूल बजावैं बाँसुरी सँग, अमृत कुंडली उपंग, संतन हित ही फूल डोल ॥
फूले बजावैं किन्नरि-तार, गति सुरमंडल झनत कार, सरस रस ही फूल डोल ॥
(फूले) बजाबत गिरगिरी गार, भेरा घहरैं अपार, संतन हित ही फूल डोल ॥
(फूले) बजावैं मुरुज रुंज, फूले बजावैं झाँझि, झालरीनि पुंज, सरस रस ही फूल डोल ॥
(फूले) सुर बजावैं दुंदभी गुंज, कूजत कोकिल निकुंज, संतन हित ही फूल डोल ॥
ब्रज जन लखि डोल फूलै, गोपी झुलावति काम्ह झूलै, सरस रस ही फूल डोल।
(फूले) मुदित मनोहर तूले, रसिक रसिकिनी फूले, सतन हित ही फूल डोल ॥
(फूली) मुदित मनोहर भावैं, लालन लाल लड़ावैं संतन हित ही फूल डोल ॥
(फूली) चंदन बंदन रोरी, मृगमद घोरी, सरस रस ही फूल डोल।

(फूले) करत कुलाहल खोरी, पुर नर नारि किसोरी, संतन हित ही फूला डोल ॥
(फूले) फगुवा दियो रस राख्यौ, पट भूषन नहिं रह्यो काख्यौ, सरस रस ही फूल डोल ।
(फूले) हरि हँसि अमृत भाख्यौ, सब कौ मन राख्यौ, संतन हित ही फूला डोल ॥
(फूले) नारदादि करत गान, रिषि मुनि सब धरत ध्यान, सरस रस ही फूला डोल ।
(फूले) बीना हरि जस बखान, (कंस मारि) फेरौ उग्रसैन आन, संतन हित ही फूला डोल ॥
(फूले) कही हरि मुनि कहाँ जाइ, तुरत मोहि लै बुलाइ, सरस रस ही फूला डोल ।
(फूले) रजधानी असुर आइ, जमुना मैं देउँ बहाइ, संतन हित ही फूल डोल ॥
(फूले) उग्रसेन सिर छत्र धाइ, मथुरा आनँद बढ़ाइ, सरस रस ही फूला डोल ॥

फूले पितु माता मिलौं धाइ, दुख नसि सुख देहु जाइ, सतन० ।
फूले मुनि सुनि ज्ञान हरषाइ, भूमि ब्रज खन छाइ सरस० ॥
फूले सुरपति सची आइ, नभ चढ़ि सुमन बरषाइ, संतन० ।
फूले हरषत होरी खिलाइ, मुनि गए बैकुंठ सिधाइ, सरस० ॥
फूले हरषहिं हरि सुजस गाइ, पूछत सुर कहि न जाइ, संतन० ।
पढ़ैं पढ़ावैं सुनैं सुनावैं, ते बैकुंठ पद पावैं, सरस० ॥
सूरदास कैसैं करि गावैं, लीलासिंधु पार नहिं पावैं, संतन०।७४

राग कल्याण

गोकुलनाथ बिराजत डोल ।
संग लिए बृषभानु नंदनी, पहिरें नील निचोल ॥

चन खचित लाल मनि मोती, हीरा, जटित अमोल।
झुलवहिं जूथ मिली ब्रज-सुंदरि, हरषति करति कलोल ॥
खेलति, हँसति परस्पर गावति, बोलति मीठे बोल।
सूरदास-स्वामी पिय-प्यारी, झूलत हैं झकझोल ॥७५॥

राग कल्याण

झूलत नंद-नँदन डोल ।
कनक-खंभ जराइ पटुली, लगे रतन अमोल ॥
सुभग सदत सदेस डांड़ी तैं रची बिधना गोल ।
मनौ सुरपति सुर-सभा तैं पठै दियौ हिडोल ॥
जबहिं झपत तबहिं कंपति, बिहँसि लागति उरोल।
त्रिदस पति सजि चढ़ि बिमाननि, निरखि दैहै ओल ॥
थके मुख कछु कहि न आवे, सकल मख-कृत झोल।
सखी नव सत साजि कीन्हे, कहत मधुरै बोल ॥
रतिपति देखि यह छबि, इन्द्र बहु भ्रम भोल ।
सूर यह सुख गोप गोपी पियत अमृत कलोल ॥७६॥

राग गौरी

डोल देखि ब्रजवासी फूलैं। गोपि झुलावैं, गोबिंद झूलैं ॥
नंद-नँदन गोकुल मैं सौहैं। मुरलि मनोहर मन्मथ मोहैं ॥
कमल-नैन कौं लाड़ लड़ावैं। प्रमुदित गीत मनोहर गावैं ॥
रसिक सिरोमनि आनँद सागर। सूरदास मन मोहन नागर ॥७७॥

कृष्ण मथुरा-गमन समय गोपियों की उक्ति—

राग गौरी

कुछ दिन ब्रज औरौ रहौ, हरि होरी है।
अब जिनि मथुरा जाहु, अहो हरि होरी है ॥

परब करौ घर आपनैं, हरि होरी है।
कुसल छेम निरबाहु, अहो हरि होरी है॥
पंद्रह तिथि भरि बरनिहौं, हरि होरी है।
सारद कृपा समाज, अहो हरि होरी है॥
फागुन मदन महीपती, हरि होरी है।
करियै यह बिधि राज, अहो होरी है॥
परिवा पिय चलियै नहीं, हरि होरी है।
सब सुख कौ फल फागु, अहो हरि होरी है॥
प्रगट करौं यह जानि कै, हरि होरी है।
अंतर कौ अनुराग, अहो हरि होरी है॥
गनहु द्वैज दिन सोधि कै, हरि होरी है।
भूपति ह्वै है काम, अहो हरि होरी है॥
ससि रेखा सिर तिलक दै, हरि होरी है;
सब कोउ करै प्रनाम, अहो हरि होरी है॥
कनक सिंहासन बैठि हैं, हरि होरी है।
जुबतिनि कै उर आनि, अहो हरि होरी है॥
चिकुर चौंर अंचल धुजा, हरि होरी है।
घूँघट आतप तानि, अहो होरि होरी है॥
तजि तिहूँ पुर प्रगटि है, हरि होरी है।
अपनी आन नरेस, अहो हरि होरी है॥
सुनि पग पग डफ डिमडिमी, हरि होरी है।
सोइ करि है सब देस, अहो हरि होरी है॥
चौथि चहूँ दिसि चालिहै, हरि होरी है।
यह अपनी इक नीति, अहो हरि होरी है॥
करै भावतौ नृपति कौ, अहो हरि होरी है।
छाँड़ि सकुच कुल रीति, अहो हरि होरी है॥

पाँचैं परिमिति परिहरैं, हरि होरी है।
चलँ सकल इक चाल, अहो हरि होरी है।
नारि पुरुष सादर करैं, हरि होरी है।
बचन-प्रीति-प्रतिपाल, अहो हरि होरी है॥
छठि छ राग रस रागिनी, हरि होरी है।
ताल तान बंधान, अहो हरि होरी है॥
चटुल चरित रतिनाथ के, हरि होरी है।
सीखत ह्वै अबधान, अहो हरि होरी है॥
सुनि सातैं सब सजग ह्वै हरि होरी है।
सबनि मत्यौ मत एक, अहो हरि होरी है॥
नृपति कहै सोइ कीजियै, हरि होरी है।
क्यौं राखियै बिबेक, अहो हरि होरी है॥
आठैं सुनि सब सजि भए, हरि होरी है।
राजा की रुचि जानि, अहो हरि होरी है॥
करहु क्रिया तैसी सबै, हरि होरी है।
आयसु माथैं मानि, अहो हरि होरी है॥
नवमी नवसत साजि कै, हरि होरी है।
कर सुगंध उपहार, अहो हरि होरी है॥
मनहुँ चलीं मिलि मेलि कै, हरि होरी है।
मनसिज-भवन-जुहार, अहो हरि होरी है॥
दसमी दस दिसि सोधि कै, हरि होरी है।
बोले राजा राइ, अहो हरि होरी है॥
काज करहु रुचि आपनी, हरि होरी है।
तौ यह काज सिराइ, अहो हरि होरी है॥
सुनि आयसु एकादसी, हरि होरी है।
बोले सब सिर नाइ, अहो हरि होरी है॥

जग जीतहु बल आपनै, हरि होरी है।
ज्ञान बिराग छँड़ाइ, अहो हरि होरी है॥
देखि भले भट आपने, हरि होरी है।
द्वादस दिवस बिचारि, अहो हरि होरी है॥
करहू क्रिया तैसी सबै, हरि होरी है।
ह्वै निसंक नर नारि अहो हरि होरी है॥
ढोल भेरि डफ बाँसुरी, हरि होरी है।
बाजैं पटह निसान, अहो हरि होरी है॥
मिलहु लोक-पति चाँढ़ि कै, हरि होरी है।
उबरो नहीं निदान, अहो हरि होरी है॥
राते कबच बरात सजि, हरि होरी है।
खरनि भए असवार, अहो हरि होरी है॥
धूरि धातु रँग घट भरे, हरि होरी है।
धरे यंत्र हथियार, अहो हरि होरी है॥
जहाँ तहाँ सेना चली, हरि होरी है।
मुक्त काछ सिर केस, अहो हरि होरी है॥
आपो पर समुझैं नहीं, हरि होरी है।
राजा रंक अबेस, अहो हरि होरी है॥
जे कबहूँ देखी नहीं, हरि होरी है।
कबहूँ सुनी न कान, अहो हरि होरी है॥
ते कुल नारि निडर भईं, हरि होरी।
लागे लोग परान, अहो हरि होरी है॥
भस्म भरैं, अंजन करैं, हरि होरी है।
छिरकैं चंदन बारि, अहो हरि होरी है॥
मरजादा राखैं नहीं हरि होरी है।
कटि-पट डारैं फारि, अहो हरि होरी है॥

जहाँ सुनहिं तप-संजमी, हरि होरी है।
धर्म धीर-आचार, अहो हरि होरी है॥
छिरकहिं तहीं निसंक ह्वै, हरि होरी है।
पकरहिं तोरि किबार, अहो हरि होरी है॥
सठ पंडित बेस्या बधू, हरि होरी है।
सबै भए इकसारि, अहो हरि होरी है॥
तेरसि चौदस दिवस द्वै, हरि होरी है।।
जनु जीते जग झार, अहो हरि होरी है॥
पूर्यो प्रगट प्रताप तें, हरि होरी है।
दूरि मिले पालागि, अहो हरि होरी है॥
जहाँ तहाँ होरी जरै, हरि होरी है।
मनहुँ मवासैं आगि, अहो हरि होरी है॥
सब नाचहिं गावहिं सबै, हरि होरी है।
सबै उड़ावहिं छार, अहो हरि होरी है॥
साधु असाधु न समुझहीं, हरि होरी है।
बोलहिं बचन बिकार, अहो हरि होरी हैं॥
अति अनीति-मिति देखि कै, हरि होरी है।
परिवा प्रगटी, आनि, अहो हरि होरी है॥
बिमल बसंध तन साजहीं, हरि होरी है।
मरजादा की कानि, अहो हरि होरी है॥
आवत ही आदर करैं, हरि होरी है।
हँसि जोरहि उठि हाथ, अहो हरि होरी है॥
बरन धर्म मिति राखहीं, हरि होरी है।
कृपा करौ रति-नाथ, अहो हरि होरी है॥
सुनि बिनती रितुराज की, हरि होरी है।
प्रभु समुझे मन माँहि, अहो हरि होरी है॥

जाइ धर्म अपने रहौ, हरि होरी है।
बसा हमारी वाँहि, अहो हरि होरी है॥
और कहाँ लौं बरनियै, हरि होरी है।
मनसिज के गुन ग्राम, अहो हरि होरी हैं॥
सुनहु स्याम या मास मैं, हरि होरी है।
कियौ जु कारन काम, अहो हरि होरी है॥
सूर रसिक मनि राधिका, हरि होरी है।
कहि गिरिधर सौं बात, अहो हरि होरी है॥
स्याम कृपा करि ब्रज रहौ, हरि होरी हैं।
बरजति मधुबन जात, अहो हरि होरी हैं॥७८॥

राग धनाश्री

कछु इक दिन औरौ रहौ, अब जिनि मथुरा जाहु।
परब करहु घर आपने, कुसल छेम निरबाहु॥
आठैं उर उनमानि कै, सबनि कियौ मत एक।
रितुराजहिं देखन चलीं, फूलत कुसुम अनेक॥
नवैं नवल नव नागरी, नव जोबन, नव भूप।
नयौ नेह नित नाह सौं, नवसत सजे अनूप॥
दसै दिनौं दिसि घोष मैं, घर-घर करहिं अनँद।
नर नारी मिलि गावहीं, जस बृंदाबन चंद॥
एकादसि इक प्रीति सौं, चलीं जमुन के तीर।
बरन-बरन बनि बनि चलीं, पीत अरुन तन चीर॥
द्वादस अभरन द्वादसी, साजि चलीं, ब्रजनारि।
हरि हलधरहिं सुनावहीं, देहिं नंद कौं गारि॥
तेरसि तन्मय तिय भईं, खेलत प्रीतम संग।
भरत भरावत लाजहीं, लज्जित कोटि अनंग॥

चौदस चतुर सखी मिलीं, हलधर पकरे धाइ।
मुख माँढ़ैं छाँड़ैं नहीं, काजर देहिं बनाइ॥
पूज्यो पूरन प्रीति करि, हरि आए हरुआइ।
बल भैया कौं छाँड़हू, फगुआ देउँ मँगाइ॥
मोहन पकरे करि मतौ, मुरली लई छुँड़ाइ।
राधा सौं करि बीनती, दीजैं हमहिं मँगाइ॥
नंद छिड़ाबहु स्याम कौं, या जग में जस लेहु।
जसुमति धरि बृषभानु कैं, फगुआ हमरौ देहु॥
जसुमति हँसि सब सखिनि स्यौं, राधे लीन्ही बोल।
मेवा मिश्री बहु रतन, दई सबनि भरि ओल॥
होरी हरषि हलाइ कै, मोहन झूलैं डोल।
गावति सखी निसंक ह्वै, कहि कहि अमृत बोल॥
पाट सिंहासन बैठि कै, अरु, अभिषेक कराइ।
राज करहु नित लाड़िले, सूरदास बलि जाइ॥७६॥

—०:❀:०—

❀ वन विहार ❀

(वन यात्रा)

राग गौरी

मानौं ब्रज तैं करिनि चलि, मदमाती हो।
गिरिधर गज पै जाइँ, ग्वालि मदमाती हो॥
कुल अंकुस मानैं नहीं, मदमाती हो।
साँकर-बेद तुराइ, ग्वालि मदमाती हो॥
अवगाहैं जमुना नदी, मदमाती हो।
करति तरुनि जल-केलि, ग्वालि मदमाती हो॥
चहुँ दिसि तैं मिलि छिरकहीं, मदमाती हो।
सुंड-दंड-भूज पेलि ग्वालि मदमाती हो॥
बृंदाबन बीथिनि फिरैं, तदमाती हो।
संग मदन गजपाल, ग्वालि मदमाती हो॥
कबहूँ नैन कर दै मिलैं, मदमाती हो।
तैसियै गज-गति चाल, ग्वालि मदमाती हो॥
नाग बेलि चाबति फिरैं, मदमाती हो।
मोदक माँझ कपूर ग्वालि मदमाती हो॥
सुगँध पुढ़े स्रवननि चुवै, मदमाती हो।
मंडित मांग सिंदूर, ग्वालि मदमाती हो॥
केसरि लाई सानि कै, मदमाती हो।
घुँघुरू घंट घुमाइ, ग्वालि मदमाती हो॥
उर पर कुच जुग घंट से, मदमाती हो।
मुक्ता-माल रुराइ, ग्वालि मदमाती हो॥

अँचल उड़त बखानियै, मदमाती हो।
मनु बैरख फहराइ, ग्वालि मदमाती हो॥
जुगल हार मनु सुरसरी, मदमाती हो।
जुगल प्रवाह बहाइ, ग्वालि मदमाती हो॥
अँग अँग छिरकैं स्याम कौं, मदमाती हो।
कुंकुम चंदन गारि, ग्वालि मदमाती हो॥
सूरदास—प्रभु क्रीड़हीं, मदमाती हो।
सँग गोकुल की नारि, ग्वारि मदमाती हो॥८०॥

राग आसावरी

जनुना कैं तट खेलति हरि-सँग, राधा लिए सब गोपी।
नंदलाल गोबर्धनधारी, तिनकैं नेहनि ओपी॥
चलहु सखी जाइयै तहाँ चलि, छिनु जियरा न रहाइ।
बेनु-सब्द करि मन हरि लीन्हौ, नाना राग बजाइ॥
सजल-जलद-तन पीतांबर-छबि, कर मुख मुरली धारि।
लटपट पाग बने मनमोहन, ललना रहीं निहारि॥
नैन सौं नैन मिलै कर सौं कर, भुजा ठएँ हरि ग्रीव।
मधि नायक गोपाल बिराजत, सुंदरता की सींव॥
करत केलि कौतूहल माधौ, मधुरी बानी गावै।
पूरन चंद सरद सी रजनी, संतनि सुख उपजावै॥
सकल सिंगार कियौ ब्रज-बनिता, नख सिख लौं भल ठानि।
लीक बेद-कुल धर्म-केतकी, नैंकु न मानतिं कानि॥
बलि बलि बल के बीर त्रिभंगी, गोपिन के सुखदाइ।
सकल बिथा जु हरी या तन की, हरि हँसि कंठ लगाइ॥
माधव नारि, नारि माधव कौं, छिरकत चोबा-चंदन।
ऐसौ खेल मच्यौ उपरापरि, नँद-नंदन जग-बंदन॥

ब्रह्मा इंद्र देव गन-गंधब, सबै एकरस बरषैं।
सूरदास गोपी बड़भागिनि, हरि-क्रीड़ा सुख करषैं ॥८१॥

राग टोड़ी

फूलनि के महल, फूलनि सेज, फूले कुंज बिहारी, फूली राधा प्यारी।
फूले बै दंपति, नवल मगन फूले, फूले करैं केलि, न्यारी यै न्यारी॥
फूली लता बेलि, बिबिध सुमन फूले, आनन दोऊ हैं सुखकारी।
सूरदास-प्रभु प्यारी पर टारत हरषि, फूले फूल चंपक बेलि, निवारी॥
॥८२॥

परिशिष्ट १

(नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित परिशिष्ट से लिये गये पद जो इस परिशिष्ट में लिये गये हैं।)

राग रागिनी बंधानी

(श्री मदन मोहन जू) मति डारौ केसरि पिचकारी।
दधि ही मथति जाहुँ जमुनाजल, हो मोहन तुम कुंज बिहारी॥
मर्म न गुरुजन पुरजन जानैं, नहिं बृंदाबन की नारी।
मासु रिसाय लड़ै मेरी ननँदी, देख रँग देहि मोहि गारी॥
मुरली मैं गावत बंगाली, अधर चुवत अमृत बनवारी।
मुदित पियत संतन सुखकारी, पूरब खचित नेहि गिरधारी॥
मृदु मुसकानि, जुवति मन मोहत, हौ हरि माखन चोर मुरारी।
सूरदास-प्रभु दोउ चिरजीवो ब्रज-नायक बृषभानु दुलारी॥
१।८३॥

राग कल्यान

बृंदाबन खेलत हरि होरी।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, नंदलला वृषभानु किसोरी॥
हौं अपनैं गृहतैं निकसी सखि, सास की त्रास ननद की चोरी।
और सखी सब छाँडि स्याम मो कर मरोरि पहुँची गहि तोरी॥
स्याम बरन अति सुंदर सांवरौ, कनक बदन राधे-तनु गोरी।
सूरज के प्रभु दोऊ राजत, पारस कंचन की सी जोरी॥
२।८४॥

राग गौरी

हौरी के खिलार भावते यौं ही जान न दैहौं ।
आगे बीरे जो बनि आए जागे हैं भाग हमारे, नैननि भरि राखौं
फगुवा न लैहौं ।।
न्यारे ह्वै मुख माँड़िहौं, अँखियाँ अँजेहौं, बीरी पलटि न लेहु और
सौं काहू की प्यारे औरै भरन न दैहौं ।।
न्यारे ही खिलैहौं, लोनी मूरति माधुरी हँसि हृदे लगैहौं ।
सूरदास मदनमोहन सँग हिलि मिलि, दोऊ जल की तरंग जैसे जलही
समैहौं ।।
३।८५।।

राग पूरबी

ऐसी को खेलौ तोसौं होरी ।
बारंबार पिचकारी मारत, ता पर बाँह मरोरी ।
नंद बबा की गाइ चराबौ, हमसौं करौ बरजोरी ।।
छाक छीनि खाते ग्वालिनि की, करते माखन चोरी ।
चोबा चंदन और अरगजा अबिर लिए भरि झोरी ।।
उड़त गुलाल लाल भए बादर, केसरि भरी कमोरी ।
वृंदाबन की कुंज-गलिनि में, गावौ राधा गोरी ।।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, चिरजीवौ यह जोरी ।।
४।८६।।

राग गोरी

ब्रज में हरि होरी मचाई ।
इततें आवति कुँवरि राधिका, उततें कुँवर कन्हाई ।
खेलत फाग परस्पर हिलि मिलि, यह सुख बरनि न जाई ।
सुघर घर बजत बधाई ।

बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ. मंजीरा सहनाई।
उड़ति अबीर कुमकुमा केसरि, रहत सदा ब्रज ठाई॥
मनौ मघवा झरि लाई।
राधा जू सैन दियौ सखियनि कौं, झुंड झुंड उठि धाईं।
लपटि-झपटि गईं स्याम सुंदर कौं, बरबस पकरि लै आईं॥
लाल जू कौं नाच नचाईं।
लीहौं छोरि पितांबर मुरली, सिर सौं चुनरी ओढाईं।
बंदी भाल नैन बिच काजर, नक बेसरि पहिराई॥
मनौ नई नारि बनाईं।
फगुवा दिए बिनु जान न पैहौ, करिहौ कौन उपाई।
लैहौं काढ़ि कसरि सब दिन की, तुम चित चोर कन्हाई॥
बहुत दिन दधि मेरो खाई।
सुसकत हो मुख मोरि, मोरि तुम, कहाँ गई चतुराई।
कहाँ गई वै सखा तुम्हारे, कहां जसोमति माई॥
तुम्है किन लेति छुड़ाई।
रास बिलास करत बृंदाबन, ब्रज-बनिता जदुराई।
राधे स्याम जुगल जोरी पर, सूरदास बलि जाई॥
प्रीति उर रहति समाई।

५।८७॥

राग टोड़ी

भली भई होरी जो आई घर आए धनस्याम।
धनि मेरौ भाग सुहाग लड़ैते, और न दूजो बाम॥
काजर दै मुख माँड़ि हरद सौं, राधा पूरे काम।
सूरदास की इच्छा पूजी, सीता मिली स्रीराम॥

६।८८॥

राग धमारि

(प्यारी) नंदनँदन वृषभानु कुँवरि सौं, खेलत रंग ठह्यौ।
उड़त गुलाल कुमकुमा आली, अंबर छाइ रह्यौ॥
अलि-सुत बरन्यौ बंकट छबि, जल-सुत अधर लह्यौ।
खंज मीन मुकताहल मानौ, ससि रथ खैंचि रह्यौ॥
हँसि मुसकात महज स्वारथ कौं, रमनिहिं रूप गह्यौ।
दारौ दरनि अरुन अति सोभा मनु, ससि गहन गह्यौ॥
गोपी ग्वाल मिमिटि सब सुंदर, सज्यौ सिंगार नह्यौ।
बरखत कंचन नीर कुसुम जल, मनु घन गरजि रह्यौ॥
स्यामा स्याम सबै सुखदाई, सुख-सागर सगरौ।
सूरदास-प्रभु मिलौ कृपाकरि, जिनि हृदये बिसरौ॥

७।८९॥

राग सारंग

हौ हो होरी खेलैं रंग सों, ब्रजराज कुँवर बृषभानुपौरि।
सुनि मुरली डफ ताल बेनु, चढ़ीं अटा अटारनि दौरि-दौरि॥
जो प्यारी न्यारी छबि सों, देखति जलधर कौं छबि अपार।
घन घटा अटा मंडि छटकै ह्वै, बदित चंद दादर बिदार॥
जो प्यारे को हितू हुतीं ते, उझकि झरोखैं झाँक वार।
करषैं भौंह भाव भेदनि बहु, हरषैं बरषैं रँग अपार॥
इक प्यारी चंदन घसि छिरकै, एक लिए कर में गुलाल।
इक प्यारी केसरि छिरकति है, भनत सूर चलि गति मराल॥

८।९०

राग होरी

आजु हौं होरी हरिहिं खिलाऊँ।
ब्रज की खोरि साँकरी घेरौं, गारी देहुँ दिवाऊँ॥

चोवा चंदन कुमकुम अरगजा, मुठी गुलाल उड़ाऊँ।
अपने अपने घर सौं निकसि, लै अबीर झोरि भरि ल्याऊँ।
सूरदास-प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, गारी गाइ रिझाऊँ॥
६।६१॥

राग सारंग

होली खेलने के पश्चात जमुना-स्नान और फगुआ का वर्णन—

रबि तनया कौ सलिल गँभीर, आबहु रे मिलि न्हाइए।
इहिं अति स्रमहिं गँवाइ देह कौ, पुनि अपनैं घर जाइए॥
भीजे गात जातहीं नूतन, तब जसुदा पै जाइए।
लै सबही को स्वाद मनोहर, मीठो होइ सो खाइए॥
ये भूषन ये बसन मनोहर, सादर सूर दिखाइए।
जानत हौ हरि बेगि बिदा ब्रज, विमुखनि जाइ चिताए॥
१०।६२॥

—•:❀:०—

परिशिष्ट २

[वे पद जो बसंत से संबंधित नहीं हैं अथवा सूरदास द्वारा रचित नहीं हैं, फिर भी बसंत-विलास में दे दिये गये हैं।]

यह पद प्रसिद्ध कवियित्री 'ताज' का है तथा उनकी प्रसिद्ध साढ़े तीन धमारों में से एक है।

राग आसावरी

डफ बाजन लागे हेली,

चलहु चलहु जैये तहँ री, जहँ खेलत स्याम सहेली ॥
जँह घन सुंदर साँवरो, नहिं मिस देखन-दाँउ।
ये गुरुजन बैरी भए, कीजै कोन उपाइ ॥
आवहु बछरा मेलिये, बन कौं देहि बिडारि।
वै देहैं हमकौं पठै, देखैं रूप निहारि ॥
औंजति गागरि ढारिये, जमुना जल के काज।
इहि मिस बाहर निकसि कैं, जाइ मिलैं ब्रजराज ॥
राग रंग रँगि मँगि रह्यौ, नंदराइ दरबार।
गाबति सकल गुवारिनी, नाचत सकल गवार ॥
धरी-धरी आनंद करि, जीवन जानि असार।
खाइ खेलि हँसि लीजियै, फागु बड़ो त्यौहार ॥
मुरली मुकुट बिराजहीं, कटि पट राजत पीत।
सूरज प्रभु आनँद सौं, गावत होरी गीत ॥

११।९३

(यह पद उस समय का है जब बलराम द्वारका से ब्रज पधारे तथा जमुनाजी से प्रसन्न होकर उनसे कहा था।)

राग कल्याण

जमुना तैं हौं बहुत रिझायौ।
अपनी साँह दिए नंद-दुहाई, ऐसौ सुख न पायौ॥
मिले मातु पितु बंधु स्वजन सब, सखनि संग बन बिहरन आयो।
अज, अनंत, भगवंत, धरनिधर, सुबस कियौ प्रिय जान सुनायौ॥
हौं भयो प्रसन प्रेम हित तेरे, कलिमल हरैं जु इहि जल न्हायौ।
अब जिय सकुच कछू मति राखहि, माँगि सूर अपनौ मन भायौ॥
१२।६४

(इस पद का संबन्ध द्वारका में श्री कृष्ण की समुद्र-केलि से है।)

राग सारंग

करत जदुनाथ जलधि-जल केलि।
अबलनि-सर लिये, पंचबु अमृत किये, दिये नन नव सुख खेलि॥
यौं राजल सिंह काल लाल, ललना रसाल रस रङ्ग।
मानहुँ स्नान मदन-धुजिनी-गज, सजनी गजिना संग॥
चंदन मलिल सिंध बिदित अलक इव, राहु बदन-बिधु दमत।
मनहु पान करि मौजनि मौं अलि, पियौ कमल-रस बमत॥
धुनि न करत, उर डरत सिंधु अति, तरँग रह्यौ ठहराइ।
पूजे कृष्न उजागर सागर, बैरा गर पहिराइ॥
भवन गवन यौं नंद-सुवन तब, निकसि चढ़े रथ कूल।
निरखत दरषत कुसुम त्रिदस, जन सूर सुमति मन फूल॥
१३।९५

(पहले की भाँति यह पद भी समुद्र-जल केलि का है। तथा 'मृगमद ..

चूर' तक इन दो पंक्तियों का संबन्ध पूरे पद से अथवा ऊपर नीचे की पंक्तियों से नहीं है। अतः ये पंक्तियां प्रक्षिप्त हैं।)

राग राज्ञी बसंती

जदुपति जल-क्रीणत जुबति संग। सागर सकुचित तजियत तरंग॥
सोडस सहस्र सत अष्ट नारि। तिन मैं अति सोभित स्री मुरारि॥
उडगन समेत ससि सिधु बारि। मनु पुनि आयौ चित-हित बिचारि॥
मृगमद मलयज केसरि कपूर। कुमकुमा कलित कृत अगरु चूर॥
छूटत कटाच्छ सर भ्रकुटि पूर। मनु धनुष-निपुन, संग्राम सूर॥
चंचल मलयानिल चलत सीर। अरु जलद बृंद छित-भित समीर॥
बर बदन निकट कच चुवत नीर। मकरंद-निमित मधुकर अधीर॥
जहं नारदादि मुनि करत गान। जग पूरत हरि-जस-बितान॥
सुर सुमन सुघन बरषत बिमान। जै जै सूरज-प्रभु सुख-निधान॥
१४।९६

(इन दो पदों में होली आ कुछ भी वर्णन नहीं है।)

राग श्रीहठी

साँवरो ढोटा को है माई बारिज-नैन बिसाल।
अधर धरे मुख मुरलि बजावत, गावत राग रसाल॥
मंद मद मुसुकनि सरोज मुख, सोभा बरनि न जाइ।
बाँकी भौं हैं, तिरछी चितवनि, चित बित लियौ चुराइ॥
अति लोने सोने के कुंडल, कौनै रचे सँवारि।
मनौ काम किल फद बनाए, फँदौं मीन-ब्रजनारि॥
सिर पगिया, बीरा मुख सोहै, सरस रसीले बोल।
अति आधीन भई ब्रज-बनिता, बस कीन्हौ बिनु मोल॥
कहा करौं देखे बिनु सजनी, कल न परै पल प्रान।
ग्वालिनि संग रंग भर्‌यौ भावत, गावत आछी तान॥

तातै और कौन हितु मेरैं, सखि चलि नैंकु दिखाइ।
मदनमोहन की चरन रेनु पर, सूरदास चलि जाइ ॥

१५।६७॥

राग धमार

ठाड़ी देखी नंद-दुवारैं हौं, सुदरि इक दह्यो लिये।
बढ़ी प्रीति, ललना गिरधर सौं, गुरजन सबहिनि बिसरि दिये ॥
नैनन कज्जल नासिका बेसरि, मुख तमोर अति राजै।
हार सुढार बन्यौ जाको मोती, रहत अधर मुख छाजै ॥
कटि लहँगा पहुँची-बंध अँगिया, फुँदना बहु बिधि सोहै।
रतन जराव जरी जाकी जेहरि, हँस चाल मृग मोहै ॥
कंचन कलस भराइ जमुन जल, मोतियन चौक पुराए।
मानहुँ छौना हँसन के से, चुगन सरोवर आए ॥
तुम तौ कहावत हो नंद-नँदन, सारँग बुद्धि है थोरी।
सूरदास प्रभु नंदलाल की, बनी छबीली जोरी ॥

१६।६८॥

परिशिष्ट ३

(इस परिशिष्ट में दिये गए पद कीर्तन-संग्रह से लिये गये हैं ।)

राग बसंत

खेलत गुपाल नव सखिन संग । नव-नव अंबर रंग--रंग ॥
मुरली बेनु डफ नए चंग । मधि नई कुहुक बाजं उपंग ॥
सुर समूह नई-नई तरंग । जहँ नव-नव गति उपजत मृदंग ॥
मृगमद लपटे चंदन सुगंध । केसर कुमकुम मलय मकरंद ॥
हुलसि जुबति बर बृंद-बृंद । लीने लपेटि आनंद कंद ॥
उड़ी परसपर अरुन रूँदि । दुरत भरत मुख नैन मूँदि ॥
घूँघट में मुख लगत मंद । मनु अरुन जलधि मैं दुरे चंद ॥
सखी एक तब कियो बंद । चतुर बोलि सिखयो सुछंद ॥
पिय नाम टेरि कह्यौ नंदनंद । रहो रहो भरौ जु नागरनन्द ॥
हाथ झारि हरि कौं दिखाइ । चोली में सौंधौं दुराइ ॥
त्रियन अंक हँस कै बताइ । गहे तब ही सब परी हैं धाइ ॥
कोउ निरखत लोचन अघाइ । कोउ आन दृग आँजत सिराइ ॥
कोउ मुख पकरि रोरी फिराइ । कोउ कहत भले हो स्याम राइ ॥
बिबस प्रेम बस स्यामलाल । मन भायौ सब करत बाल ॥
भरत अंक भरि-भरि गुपाल । सूरदास तहाँ काम पाल ॥
१७।९९॥

राग बसंत

खेलत बसंत बलभद्र देव । लीला अनंत दोऊ लहि न भेव ॥

सनकादि आदि सुर रचे ग्वार। प्रकट करत ब्रज रज विहार ॥
सुख निधि गिरधर धरन धोर। लियो बाँटि-बाँटि ओलिन अबीर ॥
मधु मंगल सुबल स्रीदाम। सखा सिरोमनि करत काम ॥
मधु मंगल आदि समस्त ग्वाल। बने सबके सिरोमनि नंदलाल ॥
रचि पचि बहु अंबर बनाइ। बागे बहु केसरि रँगाइ ।
रही पाग लसी सिर सुरंग। कुँवर सिरोमनि स्री त्रिभंग ॥
सुनत चपल सब उठी हैं धाइ। भरि भाजन लीन्हे गुलाल ॥
हुलसि उठी तजि लोक लाज। बोलि लई सब सखि समाज ॥
काऊ की कोऊ न बदत कानि। भरत हितुन कौं जानि-जानि ॥
ब्रजराज कुँवरि पर निकट आइ। नैनन सिराइ निरखैं अघाइ ॥
चतुर सखी एक हास कीन। दुरि मुरि बचाइ दृग गाँठि दीन।
पाछे तैं तारी बजाइ। ब्याहि-गीत तब उठीं गाइ ॥
तब बोले स्याम घन अपने मेल। खैंच्यो चीर तब लख्यो खेल ॥
लगि लाज चितवै न और। सखा कहै आवै गाँठि तोर ॥
सुनत बाल सब चली धाइ। बलबद्र बीर कौं गहयो जाइ ॥
कटि पटुका पट पीत लीन। भली भाँति रँग समरदीन ॥
परम पुरुष कोऊ लहै न पार। ब्रजबासिन हित सहत गार ॥
सूरस्याम हँसि कहत बैनि। कहत बैनु सुख बहोत दैन ॥

१८।१००॥

राग बसंत

देखो बृंदाबन जस बितान। छायो सब पर बरनत पुरान ॥
जाको बरनि वेद रहैं मौन धारी। करैं ध्यान मान अभिमान भारी॥
ताकौं गहत सकल मिलि ब्रज की नारी।
मुख माँडि देत होरी की गारी ॥
जाको रिझावत सब नाँच गाइ। करैं वेद युक्ति नाना उपाइ ॥

ताके आँजत दृगन माँइ । छाँड़ै नचाइ हा हा खवाइ ॥
जाके भजत नाम तजि काम केत। भव सागर को वर जानि सेत॥
दुःख नास करत सुखको निकेत।ताकौं हँसि ग्वालिनि गुलचा देत॥
जाके बस करैं सुनि सब प्रमान। डरै लोकपाल सब देत मान ॥
सो राधा बस करैं मुरलीगान। सूरदास प्रभु कत कान ॥
१६।१०१॥

राग बसंत

आई हम नन्द के द्वारैं ।
खेलत फागु बसंत-पंचमी, सुख समाज विचारैं ॥
कौऊ लै अबीर, कुमकुमा, केसर, काहू के मुख पर डारै ॥
कोऊ अबीर-गुलाल उड़ावै, आनन्द तन न सभारै ॥
मोहन कौं गोपी निरखत सब, नीके बदन निहारैं ।
चितवति मैं सब ही बस कीनीं, नागर नंद दुलारैं ॥
ताल मृदंग मुरली डफ बाजैं, झाँझन की झनकारैं ।
सूरदास प्रभु रीझि मगन भए, गोप-बधू तन वारैं ॥
२०।१०२॥

राग बसंत

बंदौं पद-पंकज नँदलाल । जे भव तारन पूरन कृपाल ॥
चित चिंचत हो बुद्धि बिसाल । कृपा करत अरु दीन दयाल ॥
सदा बसौ मेरे हृदय माँय । कुँवरि माधुरी चितहिं धाय ॥
तिमिर हरन सुखकरानंद । मुनि बंदन आनंद कंद ॥
स्याम मुकुटमनि कमल नैन । छबि समूह पर लज्जित मैन ॥
गोकुलपति गुन नाँहिन पार । स्री नंद सुवन सुमरौ उदार ॥
निगमागम सब ओघ सार । सोइ बृंदाबन प्रगटयौ बिहार ॥

रितु बसंत पहिली समाज । तहाँ मुदित जुवति जन सजे साज।
मुदित चले जहाँ सूरस्याम । बसंत बधावन नंदलाल ॥
२१।१०३॥

राग बसंत

खेलत बसंत सी नंदलाल । भरे रंग सब ग्वाल बाल ॥
जूथ-जूथ सब नबल बाल । सजि समाज उड़त गुलाल ॥
गावत पंचम सरस राग । रूप सील भरी सब सुहाग ॥
नव केसर भाजन भराइ । चन्दन सौं मृगमद मिलाइ ॥
बहु गुलाल छिरकैं फुलेल । कुँवर-कुँवरि रंग बढ़ी केल ॥
लालहिं ललना भरैं धाइ । मुख रोरी माँडैं बनाइ ॥
भले जु कहे तारी बजाइ । भले तियन बस परे हो आइ ॥
अंग-अंग सब रंग सुहाइ । पिय लोचन निरखैं अघाइ ॥
बिलसत सुख बड़भाग बाम । सुखी भए तहँ सूरस्याम ॥
२२।१०४॥

राग भैरव

तुम बेगी स्याम भलैं आए हो. होरी खेलत रंग भरी ।
चोबा चंदन और अरगजा, केसरि गागरि भरी धरी ॥
उड़त गुलाल लाल भए बादर.पिचकारिन लागी झरी ॥
सूरदास प्रभु तुम बहुनायक, चेरी ह्वै पायन परी ॥
२३।१०५॥

राग जैत श्री

रहसि घर समधिन आई । ए सब सजनन के मनभाई ॥
समधिन सौं समधौरो कीजै, कीरति यह मन आई ।
नन्दगाँव तैं बहुरि जसोदा, समधिन न्यौति बुलाई ॥

समधिन आई सब मन भाई, निस समधी सँग खेली।
खोलि हुलास आइ ढिग बैठी, मोहरन की सी थैली॥
अति सुरग सारी समधिन की, लैहँगा अति ही सुढार।
फारि रही सिगरी समधिन की, चोली जोबन भार॥
समधिन कों हाथी को भावै, आधौ नीकौ पूरौ।
रँग रँगीलौ अरु चटकीलौ, हाथ भरे को चूरौ॥
समधिन तौं दीयोई चाहै, खोलि डबा की गाँठि।
अपने समधिन के नेगन कौं, हीरा पन्ना बाँठि॥
समधिन की है गली साँकरी, समधी आवन जोग।
आधौ बाहर आधौ भीतर, बहुत बराती लोग॥
समधिन कैं मेल्यौ ही चाहैं, गल फूलन के हार।
काढ़न कहै समधिन समधी सौं, डोला के जु कहार॥
यह लीला सुर नर मुनि गाई, देखत रहे लुभाइ।
चिरजीवो दूल्हे अरु दुलहिन, सूरदास बलि जाइ॥

२४।१०६॥

राग धनाश्री

नैंकु मोहड़ो माँडन देउ होरी के खिलैया।
जो तुम चतुर खिलार कहावत, अंगुरिन कौ रस लेहो॥
उमड़े घुमड़े फिरत रावरे, सकुचत काहे हे हो।
सूरदास प्रभु होरी खेलो, फगुवा हमरौ देहौ॥

२५।१०७॥

राग धनाश्री

अपने पिय संग खेलो मिलि होरी, पिचकारिन रंग भरौ गोरी।
गृह-गृह तें बानिक बनि-बनि आई, साँवरी सलौनी सुंदर भोरी॥

बाजत ताल मृदंग मुरज डफ, बीच-बीच मुरली धुनि थोरी।
चोवा चन्दन और अरगजा, अबीर लिये भरि भरि झोरी ॥
मैं अपनौं बर पायौ री सजनी, बाँधि प्रीति रस डोरी।
सूर स्याम प्रभु रस भरे खेलत, मदनमोहन राधा जोरी ॥
२६।१०८॥

राग काफी

औरन सौं खेले धमार लाल, मोसौं मुखहू न बोलै।
नंद महर कौ लाडिलो मोसौं, ऐंठ्यौ ही ऐंठ्यौ डोलै ॥
राधा जू पनियाँ निकसी, बाको घूँघट खोलै।
सूरदास प्रभु साँवरो, हियरा बिच डोलै ॥
२७।१०९॥

राग काफी

सखौंनी स्यामा मन हर्यौ हो, रस बस कीन्हे नन्द कुमार।
सब जुवतिन में राजत, आज भली वृषभानु कुमार।
नख सिख लौं अंग-अंग प्रति, मानौं उदयौ कोटिक मार ॥
चरन कमल बर बिमल, कंचन के नूपुर झंकार।
मनौं मराल बाल की मंडली, बोलत डोलत चार ॥
कदली खंभ जघ जुग मानौं, मद गयंद अति चार।
केहरि कटि किंकनी हाटक तन, पहिरे नील पट सार ॥
नीबी नाभि त्रिबली रोमावलि, कंचुकी कुच बिच हार।
मानौं सुभग सुमेर अङ्ग ते, बसी गंग द्वै धार ॥
कर पौंहची फुंदना मुद्राबलि, कंकन चुरी सुढ़ार।
राजत अति फल फूल भरी द्वै, मानौं कल्प तरु डार ॥
बदन इन्दु अरबिन्द नैन भय, मनहुँ मधुप गुंजार।

ताटंक सुवन सरस नकबेसर, बिंदु चिबुक सिंगार ॥
हँसन दसन द्युति अधर बिंब छबि, मृगमद तिलक सिँगार ।
रसना एक छबि सरस सीस छबि, मनौं तरंग निधि बार ॥
अपनी बुद्धि हरि हेत बिरंचि रचि, जनु राधा जु नारि ।
सूरदास प्रभु मोहन नागर, निरखत बदन निहारि ॥

८८११०॥

रामकाफी

खेलत जाके रंग रह्यो हो ब्रजबासिन संग फाग ।
बीना, ताल, मृदंग, झांझ, डफ, बाजत बंस रसाल ॥
गावत गिरिधर रुचि उपजावत बिबस भईं ब्रजबाल ।
लाल गुलाल लिए ओलिन में, बहुबिध केसर घोरि ।
मोहन हाथ कनकपिचकारी, क्रीड़त ब्रज की खोरि ॥
मधुमंगल स्रीदामा तुमहुँ. होहु त्रियन की ओर ।
जाके खेलत सुख उपजत है, यों कह्यौ नन्दकिसोर ॥
गारी देंहि जसोदा कौं सब, प्रेम प्रीति रस सान ।
यह छबि फबी जु कहाँ लगि बरनैं, बुधि थकित अनुमान ॥
गोरे नंद जसोदा गोरी, कान्हर को गुन स्याम ॥
प्रथम ही न्हाइ जसोदा बैठी, देखे हे बृषभान ।
हलधर कह्यो भुजा ऊँची कर, कारे जो बृषभान ॥
कीरति कहो कोन सौं जाई, राधा रूप निधान ॥
बहुर्यो सिमिटि सकल ब्रज सुंदरि, बेनी गुही बनाइ ।
माँग सँवारि त्रिया से कीने, पचरंग पाग छिनाइ ॥
स्री राधा चोली पहराई, ललिता लैहँगा सारी ।
आभूषन सब अंग बनाए, निरख थकी ब्रजनारी ॥
राधे बोलि कह्यो सखियन सौं, रही रूप रस पाग ।

जो पुरुषारथ देहि बिधाता, ऐसी कामिनि लाग ।।
कान पकर गुलचे चंद्राबलि, सखियन पहौंची जाइ ।
राधा मगन भई बिहरतही सकुचि रही सिर नाइ ।।
उपरना पचरंगी पगिया, सिर बाँध चली इक नारि ।
निकट गई मोहन के धोखें, हलधर गहे हैं संभारि ।।
कोउ नीलाम्बर ले भागी, कोउ बैन बखानत नाम ।
काहू दई कपट की बीरी, लीजे जू बलिराम ।।
सारी सुरंग चूनरी हमकों, आभूषन बहु मोल ।
इतनौं फगवादे छूटोगे, देहु स्रीदामा ओल ।।
तब हलधर जुवती सनमानी, मेवा दियो मँगाइ ।
कंचनथार भरि हीरा मानिक, सूरदास बलि जाइ ।।

२६।१११।।

राग काफी

होरी खेलें स्याम सँग नवल बाम, बृषभानु धाम धननननन ।
संग लिए ग्वाला बाला बाजत डफ ताल, उड़त गुलाल फननननन ।।
इत बनी युवती दिए बेंदी, आड़ भाल, गावैं मुख गारी एकमननननन।
पुरीहैं सकल नारी पकरि मुरारी लीने, पट उतारी आँजे दृगननननन।।
परे रंग माँट अति बिविध भाँति, झट मारत साँट सननननन ।
कीजेहैं रंग चीर रहे सरीर त्रिय, देहो दरस लागे लाज नयननननन।।
हगुवा मँगाय दियो मन मनाय लीयौं, कुँवर-कुँवरि एक मननननन ।
सूरदास प्रभू निरख दंपतिसुख, बारबार बल चरननननन ।।

३०।११२।।

राग काफी

निर्तत दोउ गति लिये हो ललना बृषभानु नंदिनी-नन्दलाल ।

नवसत साज सिँगार किए, अंग मोपें बरनी न जाइ।
राधे आधे कोरैं चितवत, हरि चित लियो चुराइ ॥
मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, घूँघरवारे बार।
मृगमद तिलक बन्यौं भृकुटी बिच, ब्रज जुबतिन फंदबार ॥
अधर कपोल नासिका मोती, दृग चचल मन मीन।
देख मुखारविंद की सोभा, राधा जू भए अधीन ॥
जूथनि जूथ चली ब्रजबनिता, ले भरि मोद अबीर।
जाइ मिली बृषभानु नंदिनी, नदी जमुना के तीर ॥
गोप ग्वाल मिल चले घोष तें, नाना स्वाँग बनाइ।
गावत हँसत करत कोतूहल, मिले हैं स्याम पै जाइ ॥
उत हलधर ब्रजबासी लिए संग, इत सब ब्रज की नार।
दोउ मिलि रसरंग बढावत, गावत फाग धमार ॥
ताल, मृदंग, झाँझ, डफ बाजत, बिच मुरली की घोर।
पून्यौं चंद बदन मोहन कौ राधाजू नैन चकोर ॥
लीनी हाथ कनक पिचकारी, गोकुल के नर नार।
खेल मच्यौ बृषभान पौरि में, कोउ न मानत हार ॥
उड़त गुलाल, अबीर कुंकुमा, रह्यौ दसौं दिसि छाइ।
प्रेम मगन भई फिरत ग्वालिनी, आनंद उर न समाइ ॥
नील कमल लीने गोपिन कर, ग्वालन दीऐं मार।
हो हो हो करि होरी खेलन, देत परस्पर गार ॥
कोऊ हलधर कौं कोऊ स्याम कौ, करो कछू भेद उपाइ।
सावधान ह्वै फिरत ग्वाल सब दृष्टि न इत उत जाइ ॥
सात पाँच मिलि गोप भेष धर, हलधर पकरे जाइ।
फेंट पकर बस किए आपने, छूटोगे आँखि अँजाइ ॥
तब मोहन कियो भेख सखी को, औरौं सखी बनाइ।

जाइ गहे वृषभान नंदिनी, दाऊ लिए छुड़ाइ ॥
जित तित तें सब धाईं ग्वालिनी, मोहन घेरे जाइ।
राधा कह्यौ जान नहीं पावैं, मुरली लई है छिनाइ ॥
स्रीराधा जाइ गहे मनमोहन, अंचल लियो छुड़ाइ ।
कै नाचो कै रहौ हार तुम, फगुवा देहु मँगाइ ॥
मोहन सखा बुलाइ आपनौं, मेवा बहुत मँगाइ ।
आपुन चाखि चखावत ग्वालन, गोपिन अँगुरी दिखाइ ॥
तब प्यारी उठि धाइ सखिन लै, मेवा लियो छुड़ाइ ।
आपुन खाइ खवावत गोपिन, ग्वाल रहे डहकाइ ॥
मोहन हँस बस करी ग्वालिनी, लीने सबै मनाइ ।
राधा माधो केलि करो दोऊ, रतिपति अति सुख पाइ ॥
सिब बिरंचि सुरपति सुधि बिसरी, चकृत रह्यो रथ भान ।
बरखत सुमन सुरेस त्रिया सब, बारत तन मन प्रान ॥
जुगलकिशोर सदा मन मेरे, रहो रसरूप समाइ ।
सूर स्याम स्यामा प्यारी छबि, निरखत दृगन अघाइ ॥

३१।११३॥

राग काफी

आज हरि ब्रज-जुबतिन पकरे ।
पहली रिस होरी के मिस, मन भायो सो जु करे ।
मोर मुकुट पीतांबर मुरली, जे सब साज हरे ॥
पहराई चूरी चूनरि, बेंदी दै दृग कजरे ।
चरन घूँघरा करकंकन, बाजूबँद बाँह धरे ॥
सीसफूल नासा बेसरि, मोतिन माँग भरे ।
तृनावर्त ऊपर तें डार्यो, तब नहीं नेकु डरे ॥
सो हरि परे ब्रज-जुबतिन के बस, हाहा खात खरे ।

करन काम कह नँद जसोदा, कीए सो वहै निदरे ।
सूरदास प्रभु छलतें नहिं छूटे, छूटे जब पाँइ परे ॥
३२।११४॥

राग काफी

मोहन मुनि ह्वै आए हो ।
हो मेरे ललना सबको मन हरु लाए हो ॥
रसमसी चाल चले अलबेली, अंग चढ़ाइ बिभूत ।
कानन कुंडल मुकुट बिराजत, पीतांबर ओढे कटि पूत ॥
दंड कमंडल गही जप माला, आसन लियौ बनाइ ॥
कोटि जनत राधा पचिहारी,मुख न बोलत मुसिक्याइ ।
जगजीवन जोगी ह्वै आए, अरस परस लिए ग्वाल ।
मानौं कोटि उडुगन ससि जैसे, ऐसे बने नंदलाल ॥
दृग दृग थेई थेई धुनि बाजे, इत गोपी उत ग्वाल ।
आनद भई है सकल ब्रज बनिता,बोलत बचन रसाल ॥
ब्रह्मादिक इन्द्रादिक मुनि बर, देखत कोटि तेतीस ।
स्त्री गोपीनाथ एक ख्याल बनायौ,सकल रचनाको ईस॥
जान्यौ भेद बलि मोहन को, मुखमाँड्यो सकल सुबास ।
जय जयकार करत सुर नर मुनि,बरखत कुसुम अकास ॥
नबल किसोर कहांलो बरनौ, सोभा कही न जाइ ।
सूरदास बलि लाल छबीले, निगम निरंतर गाइ ॥
३३।११५॥

राग सारंग

माई होरी खेले मोहना, लिए गुलाल अबीर ।
बन बन चलीं सकल ब्रजबनिता,पहिर बिबिध पट चीर॥
अगर जबाद कुंकुमा केसर, चरचित स्याम सरीर ।

मृदु मुसिकाइ परस्पर सुंदरि, दसन झलक मुख हीर ॥
प्रेम सुरंग पिचकारी छूटत, जमुना को नीर।
सूरदास प्रभु रसबस कीन्हे, हरि हलधर के बीर ॥
३४।११६॥

राग सारंग

तारी दै गारी गावहीं ।
एकतैं एक बनी ब्रज बनिता, नाना रंग बरसावहीं ॥
बाजत ताल, मृदंग, झांझ डफ, मोहन बेनु बजावहीं ।
चोबा, चंदन, अगर, कुंकुमा,सुरंग, गुलाल उड़ावहीं ॥
इत मोहन उत सखी समूह मिलि,खेलैं फागु हँसावहीं ।
सूरदास प्रभु तुम बहुनायक, फगुआ दे दे आवहीं ॥
३५।११७॥

राग गोरी

खेलत हैं हरि हो हो होरी । ब्रज तरुनी रससिंधु झकोरी ॥
बाल बयस्क और नवतरुनी । जोबन भरी चपल दृग हिरनी।।
नवसत सजि गृह गृह तैं निकसीं।मानौं कमल कली सी बिकसीं।:
पिकबैनी तन चंपक बरनी । उपमा कों नहीं मनसिज घरनी ॥
बरन बरन कंचुकी और सारी । मानौं काम रची फुलवारी ॥
द्वादस आभरन सजि कंचनतन । मुख ससि आभूषन तारागन ॥
मानौं मनोभव मनतैं कीनी । और त्रिभुवन की सोभा लीनी॥
देखत दृष्टि छिन न ठहराई । ज्यौं जल झममलात जलझाँई॥
ताल, मृदग उपंग बजावत । डफ आवज स्वर एक मिलावत॥
मधु रितु कुसुमित बन जु बनोरी । गावत फाग राग रति गोरी ॥
आई सकल नंद के द्वारैं । अगनित सकल सुगंध सँवारैं॥
झूमझूम झूमक सब गावैं । नमत भेद दुसहु दिसतैं आवैं॥

रस सागर उमड्यौ न समाई । मानौं लहर चहूँ दिस धाई ॥
खोर खिरक गिरि जहांही पावै । धाइ जाइ ताहि गहि लावैं ॥
कर छाँड़त अपनौ मन भायौ ।उड़त गुलाल सकल नभ छायौ॥
घर मैं ते मनमोहन झाँके । दूर भए तब जुवतिन ताके ॥
एक ही बेर सबैं जुर धाईं । पौरि तोर सावर में आईं ॥
मोहन गहत गहत छुटि भागे । पीतांबर तज तन भए नागे ॥
दौरि अटा चढि दई दिखाईं । उततें स्याम घटा जनु आईं ॥
सुंदरस्याम मनि गन तन राजैं । गिरा गँभीर मेघ ज्यौं गाजैं ॥
टेरटेर पीतांबर माँगैं । गोपी कहत आइ लेहु आगैं ॥
पीतांबर राधिका उढ़ायौ । हरि निरख परम सुख पायौ ॥
पीतांबर तहाँ सोभा पाई । घन तज दामिनि खेलन आई ॥
तबहीं अरगजा स्याम मँगायो । अपने कर वर घोर बनायो ॥
सुचि चढ़ि घन ज्यौं बरखायो । धाराधव जानौं उग आयौ ॥
तब इन जसुमति ठाड़ी पाई । सौंधे गागर सिरतें नाई ॥
उततें निरख रोहिनी आई । बीच छाँड़ि वहै महरि बचाई ।
आंगन भीर भई अतिभारी । जसुमति देत दिवावत गारी ॥
गोपिन नंद दुरे गहि काढ़े । कंचनगिरि से आगे ठाड़े ॥
जन जुबती ऐरावत लाईं । पूजत हस्त गोरि की नाईं ॥
नंद जसोदा गौरा गोरी । छिरकत चंदन बंदन रोरी ॥
पूज पूज बर माँगत मोहन । बिनु पाए छांड़त नहिं गोहन ॥
एक कहै मोहनहिं बतावो । तो तुम हम पै छूटन पावो ॥
एक सिखावत एक बतावत । तारी दै दै एक नचावत ॥
एक गहै कई फगुवा माँगैं । एक नैन काजर दै भागैं ॥
बसन अभूषन नंद मँगाए । दए बसन जैसे जिहिं भाए ॥
देत असीस सकल ब्रजबाला । जुग जुग राज करौ नँदलाला ॥
मदनमोहन पिय के गुन गावै । सूरदास चरननि रज पावै ॥

—:०:— ३६।११८॥

परिशिष्ट ४

(इसमें वे पद हैं जो जन जीवन में सूरदास के नाम से विख्यात हैं। इस प्रकार के अनेक पद देश में बिखरे पड़े हैं उनमें से कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं। निम्न पद हमने स्व० श्री चुन्नीनाथ जोगी से स० १९४० ई० में सुने थे)

राग होरी

मेरे आयो रे स्याम नटवर बन कैं।
गाढ़ो बाँस ढोल ढमकाने, चढ़ आयौ बाँस पकर कैं॥
पीतांबर की करी धोवती,लाल कछी कछनी कर कैं।
हाथ मैं थार गुलाल फैंट में, मारत मूठी भर कैं॥
अबीर गुलाल की धूम मची है, केसरि रंग बरष कैं।
सूर स्याम हरि फगुआ खेलैं, डारत मूठी हरष कैं॥

३७।११९॥

राग होरी

बृंदाबन स्याम मची होरी।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, बरषत रंग उड़त रोरी॥
कित तैं आए कुँवर कन्हैया, कित तैं आई राधा गोरी।
गोकुल तैं आए कुँवर कन्हैया, बरसाने से राधा गोरी॥
कौन के हाथ कनक पिचकारी, कौन के हाथ अबीर झोरी।
कृष्न के हाथ कनक पिचकारी, राधा के हाथ अबीर झोरी॥
अबीर गुलाल की धूम मची है, फैंकत है भरि-भरि झोरी।
सूरदास छवि देख मगन भए, राधे स्याम जुगल जोरी॥

३८।१२०॥

राग होरी

डफ बाज्यौ रे छैल मतवारे को।
डफ की ढमक सौं सब घर हाल्यो, हल्यौ खंभ तिबारे को।
बाजूबंद खहेला सोहैं, गले सोहैं हार नगवारे को॥
मैं बरज्यौ जनु जाहु अकेली, ठाड़ो है छैल नँदबारे को।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं, तन मन धन चहुँ वारे को॥

३६।१२१॥

राग: होरी

जमुना तट आजु मची होरी।
हलधर गिरधर मदन मनोहर, खेलत हैं जोरी जोरी॥
अबीर गुलाल कुमकुमा केसरि, कीच भरी खोरी खोरी।
मोर मुकट मकराकृत कुण्डल, सोहत है सुंदर जोरी॥
फैंट गुलाल हाथ पिचकारी, अबीर गुलाल भरी झोरी।
सुन्दर स्याम काम छबि लाजत, माथे लसै सुंदर खोरी॥
हिलमिल फागु परस्पर खेलत, फैंकत हैं भरि-भरि झोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, चितवन स्याम बसी मोरी॥

४०।१२२॥

(निम्न पद हमने श्री नवलकिशोर मिश्रा, पेशकार जजी, मैनपुरी से सुने हैं)

राग काफी

आईं रे स्याम होरी खेलन आईं।
बरसाने मधुवन की नारी, सब लाज छाँड़ि पति तजि धाईं।
करि सिंगार चलीं ब्रज बनिता, चाल चलत गति गजहु लजाई॥
ढाल दिए घूँघट पट की, औ नैन की कोरन सान धराई॥
इत हैं गुपाल सखा सँग लीन्हे, केसरि कुमकुम लिए हैं लुगाईं।
मारी मार परस्पर बीतै, नँद पौर सौं जमुना ताईं॥

घेरि लियौ चहुँ ओर सो गोकुल,हरि के पकरिबे कौं घात लगाई ।
ग्वाल बाल सब भए हैं दुचीते ललिता पकरि हलधर जूँ कौं लाई ॥
बड़े ही प्रबीन पड़े अबलन बस, भूल गए सिगरी चतुराई ।
मन आवै सोई गुलचा मारैं, अरु दोऊ हाथन हा हा ऊवाई ॥
फगुआ देत, लेत नहीं सुंदरि, बिनती करत त्रिभुवन पति राई ।
सूर सखिन के जब बस परि गए,राम स्याम दोऊ आँखें अँजाई ॥
४१।१२३॥

राग काफी

जो ब्रज कुंजन जाँय, पकड़ लाई नंद के लाला ।
हा हा करावत पैंया परावत, ब्रज की बाल गुपाला ॥
एक सखी कर पकरि नचावत, बहुत बजावत गाला ।
पाँव पैजनी अधिक दिराजत, बैंदी भाल बिसाला ॥
आँखिन अंजन,मुख बिच मंजन, लोग कहै ब्रज बाला ।
आन जसोमत यह छबि निरखी,तो मोहन मुरली वाला ॥
बृंदाबन की कुंज गलिन मैं, खेलि रह्यौ नंदलाला ।
सूर स्याम छवि कँह लगि बरनौं,मोहि लई ब्रजबाला ॥
४२।१२४॥

राग विहाग

कर लिएँ अबीर गुलाल साँवरी खेलत होरी ।
कृष्न गह्यो ललिता को लीलाम्बर, उनहुँ पीतांबर गह्यौ बहोरी ।
छूटी अलक मुकुट लपटानी, मानौं राहू चंद गहोरी ॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, एक सखी धुनि टोल टकोरी ।
गावत चली हैं बिहाग ललित सुर,सिव बिरंच सनकादि छकोरी ॥
मदन मंयक दिवाकर लज्जित, और कवि को बरन सकोरी ।
गावत सुनत चार फल पावत, लखि हरि पद द्विज सूर तरोरी ॥
४३।१२५॥

शब्द-कोष

अ

अँकवारि—(स्त्री) आलिंगन

अंचल—(पु०) पल्ला, साड़ी का छोर। साड़ी या ओढ़नी का वह भाग जो सिर पर से होता हुआ सामने छाती पर फैला हो।

अंजरि—(स्त्री०) अंजलि, अंजली दोनों हथेलियों को मिला कर बना हुआ संपुट।

अंजोरी—(स्त्री) प्रकाश।

अंबर—(पु०)

१. वस्त्र। उदा० "तब तुम अंबर हरे हमारे कीन्हे कौन उपाय।'२९

२. आकाश। उदा० 'उड़त गुलाल अरुन भए अंबर।'

अकल—(वि०) निराकार।

अगर—(पु०) अगरु।

यह सुगंधित लकड़ी का वृक्ष भूटान, आसाम, पूर्वी बंगाल, खासिया और मर्तबान की पहाड़ियों में उत्पन्न होता है। इसकी ऊँचाई ६० से १०० फुट तक तथा घेरा ५ से ८ फुट तक होता है। जब यह २० वर्ष का होता है तब इसकी लकड़ी अगर के लिये काटी जाती है। कुछ लोगों के विचार से इसकी लकड़ी पचास-साठ वर्ष पूर्व नहीं पकती। पहिले तो इसकी लकड़ी बहुत साधारण पीले रंग की और गंध रहित होती है परंतु कुछ दिनों में धड़ और शाखाओं में जगह-जगह एक प्रकार का रस आ जाता है जिसके कारण उन स्थानों की लकड़ियाँ भारी हो जाती है। इन स्थानों की लकड़ियाँ काट ली जाती है और अगर के नाम से बाजार में बिकती है। इस लकड़ी में जितना रस अधिक होता है लकड़ी उतनी ही अधिक भारी होती है किंतु बिना पेड़ काटे इस बात का निर्णय नहीं हो सकता कि इस पेड़ में कितना अगर होगा। पेड़ का हलका भाग जिसमें रस या गोंद कम होता है 'दूम' कहलाता है परंतु असली काली लकड़ी अधिक रस होने के कारण 'गरकी' कहलाती है। सूरदास ने कुछ पदों में अगर का उल्लेख एक द्रव्य के रूप में किया है जो अन्य पदार्थों में साथ घोला जाता है। अतः

यहाँ अगर का अर्थ 'अगर का रस' लेना ही उचित है।

अग्रज—(पु०) बड़ा भाई।

अनंग—(पु०) कामदेव।

अचगरी—(स्त्री०) छेड़छाड़।

अटा—(स्त्री०) सबसे ऊपर की कोठरी अथवा छत।

अटारी—(स्त्री०) देखो अटा।

अतोल—(वि०) अत्यधिक, बहुत ज्यादा।

अनंग—(पु०) कामदेव।

अनियारे—(वि०) नुकीले, तीक्ष्ण।

अनु-अनु- वि)अणु-अणु,कण-कण

अनुज—(पु०) छोटाभाई।

अनुराग—(पु०) प्रेम

अनुरागना—(क्रिया स०) प्रेम करना।

अप—(सर्व०) आप।

अवलंबित—(वि०) आश्रित, सहारे पर स्थिर, टिका हुआ।

अबुंआ—(पु०) आम।

अवलोकना—(क्रिया स०) देखना।

अबीर—(पु०) रंगीन बुकनी जिसे लोग होली के दिनों में अपने इष्ट मित्रों पर डालते हैं। यह प्रायः लाल रंग की होती है तथा सिंघाड़े के चून में हल्दी और चून मिला कर बनता है। अब अरारोट और विलायती बुकनियों से तैयार होती है। गुलाल। (हिंदी शब्द-सागर)बल्लभकुल सम्प्रदाय में दस सेर सिंघाड़े के चून में आध पाव कपूर कचरी, आध पाव बालछड़, एक पाव देसी कपूर के मिश्रण से जो बुकनी तैयार की जाती है। वही अबीर कहलाती है।

तुलसीदास ने अबीर का प्रयोग गुलाल के अर्थ में किया है उदाहरण-

अगर धूप बहु जनु अंधियारी।
उड़हि अबीर मनहु अरुनारी।

किंतु सूरदास ने अबीर शब्द का प्रयोग गुलाल अर्थ में कहीं नहीं किया! सूरदास ने अबीर और गुलाल दोनों का साथ-साथ वर्णन किया है इससे दोनों स्पष्ट रीति से दो पृथक वस्तुऐं दिखाई देती है। (देखो पद सं० १३, ३५, ६७) इसके अतिरिक्त अबीर का पृथक वर्णन भी आता है, किंतु कहीं भी इसके रूप पर प्रत्यक्ष प्रकाश नहीं पड़ता।

एक पद (सं० ६५) में सूरदास ने 'बरन पचासक अबिर संवारे' का भी उल्लेख है जिससे प्रतीत होता

है कि इस सिंघाड़े के चून में विविध भांतिके रंग मिलाकर भी अनेक प्रकार की बुकनी तैयार की जाती होगी जो अबीर ही कहलाती था।

इसके अतिरिक्त 'भरि अरगजा अबीर कनकघट देति सीस पै नाँइ' का भी उल्लेख मिलता है जिससे उसके अरगजा के साथ घोलने की धारणा बनती है। अभ्रक चूर्ण पानी में घुल या मिल नहीं सकता। अतः सूरदास का अबीर अभ्रक चूर्ण भी नहीं हो सकता। सूरदास ने और भी मिश्रणों का वर्णन किया है—

चोका चंदन अरगजा मिलि झूमक हो।
मथिलै निकसी इक संग मिलि झूमकहो।।

अतः हमको सूरदास के अबीर से उसी अबीर को समझना चाहिये जो वल्लभकुल सम्प्रदाय में सुगंधित पदार्थ और सफेद बुकनी से तैयार किया जाता है।

अभिसार—प्रीतम से मिलने जाने को अभिसार कहते हैं।

अमित—(वि०) असीम, बेहद।

अमृतकुंडली—(पु०) इस वाद्य का उल्लेख संगीत ग्रंथों में नहीं मिलता। केवल अष्टछाप के कवियों ने ही इसका उल्लेख किया है। पोपले ने एक अत्यंत प्राचीन वाद्य 'अमृत' का उल्लेख किया है जो रावण हस्त वीणा की भाँति का होता था। ब्रज में भी अमृत कुंडली नामक कोई वाद्य प्रचलित नहीं है। इसलिये यह कहना कठिन है कि इसका रूप कैसा होता था। ब्रज के कुछ लोगों का विचार है कि यह अमृत कुंडली सर्प के फन की भाँति को खड़ा हुआ स्वर मंडल है जिसकी गैंडूरी में तूबे लगे रहते हैं। सर्प विष कुंडली है किंतु यह मानों अमृत बरसाने वाली है अतः अमृत कुंडली है।

अरगजा—(पु०) एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है। यह केशर, चंदन, कपूर आदि के योग से बनता है। यह श्री विहारी जी के मंदिर में होली के अवसर पर बनाया जाता है। वल्लभ कुल सम्प्रदाय में कुछ लोगों का विचार हैं कि अरगजा 'अगरजा' का बिगड़ा हुआ रूप है। यह अगर की गाँठों से चूआकर निकाला जाता है और बहुमूल्य सुगंधित द्रव्य होता है। चोवा और अरगजा में फिर यह है

कि चोबा साधारण अगरु से तथा अरगजा एक दम बढ़िया अगरु से बनता है।

अरज—(स्त्री) अर्ज, विनती।

अरुन—(वि०) अरुण, लाल।

अलि—(पु०) भौरा।

अष्ट सिद्धि—आठ सिद्धियाँ। नाम इस प्रकार है—

अणिमा, महिमा, लघुमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, कामावसायिता।

आ

आँग—(पु०) अंग।

आउझ—(पु०) आवज।

अष्टछाप के कवियों के वर्णन में कहीं भी आवज के रूप पर प्रकाश नहीं पड़ता। किंतु तत्कालीन अबुल फजल द्वारा लिखित 'आइने अकबरी से पता लगता है कि यह हुड्डुक्का का पर्यायवाची शब्द है। हम कह सकते हैं कि दो नगाड़ों को नीचे की ओर से रस्सी से कस कर तथा ऊपर की ओर से उनका मुख चमड़े से ढ़क कर तथा रस्सी से कस कर जो रूप होगा वही हुड्डुक्का का रूप है (आइने अकबरी का भाग २ पृ० ३७२, जैरेट द्वारा अनुदित) उसी काल में अहोबल द्वारा लिखित संगीत परिजात, (२, २१६–२१९) के अनुसार यह दो मुखा वाद्य सोलह अंगुल लम्बा तथा बीच में कुछ पतला होता है। इसके मुखों का व्यास आठ-आठ अंगुल होता है। वे चमड़े की डोरियों से कसे रहते है। इनमें छेद होते है तथा दो कड़े लगे रहते है। डोरी के अंत में एक ओर डोरी होती है। इसी को पकड़ कर वाद्य बजाया जाता है।

इस प्रकार इस वाद्य का स्वरूप डमरू जैसा प्रतीत होता है।

आड़—(स्त्री) आड़ा तिलक जो ब्रज में स्त्रियाँ मस्तक पर लगाती है। ब्रज में आड़ लगाने की यह विधि है कि मलय चंदन और केशर को साथ-साथ घिस लेते हैं। फिर उसे मध्यमा और तर्जनी के पोरों पर लगाकर दोनों अँगुलियों को पास-पास रखकर हलके हाथ से मस्तक के एक सिरे से दूसरे सिरे तक इस प्रकार खींच दी जाती है कि पास-पास आड़े तिलक लगे प्रतीत होते हैं।

आन—(वि०) अन्य, अन्यान।

आली—(स्त्री०) सखी।

आवझ—देखो आउझ।

इ

इंदु—(पु०) चंद्रमा ।

ई

ईषद—(वि०) ईषत्, थोड़ा, कुछ, अल्प ।

उ

उचाना—(क्रिया सं०), ऊपर उठाना ।

उदा०—बाँह उचाइ कहत हो हो हो, लै लै नाम देत प्रभु गारी ।

उचाट—(पु०) अनमनापन ।

उड़गन—(पु०) तारागण ।

उपंग—(पु०) उपंग के वर्तमान काल में दो रूप दिखाई पड़ते हैं । एक डमरू के आकार का, दूसरा ढोलक के आकार का । यह सोलह से बीस अंगुल तक मिट्टी, लकड़ी अथवा धातु का बना हुआ होता है जो एक ओर पतले चमड़े से मढ़ा रहता है ताँत की एक डोरी लेकर इसके सिरे पर गांठ लगाकर चमड़े की एक टिकुली उसमें पो लेते हैं । फिर उस ताँत की डोरी को चमड़े के मध्य से दूसरी ओर निकाल कर उसे एक लकड़ी के टुकड़े पर लपेट लेते हैं । यह डोरी एक सूत तक मोटी तथा चार पाँच हाथ तक लंबी होती हैं । डोरी जितनी पतली होती है उनता ही बारीक शब्द निकलता है । यह बगल में दाबकर जवा द्वारा बजाया जाया है ।

उपरैना—(पु०) दुपट्टा ।

उपाई—(पु०) उपाय, युक्ति ।

उमगाना—(क्रिया सं०) उभाड़ना ।

उरोल—पु० दृश्य ।

उसारी—(संज्ञा पु०) दालान ।

उलेंड़ना—(क्रिया सं०) ढरकाना, उड़ेलना, ढालना ।

ए

एलि—(संज्ञा स्त्री०) एला, इलायची ।

ओ

ओट—(संज्ञा स्त्री) आड़ ।

ओल—(संज्ञा स्त्री) साक्षी ।

ओसरो—(संज्ञा पु०) क्रम

क

कंकन—(संज्ञा पु०) कंकण, कड़ा, हाथ की कलाई में पहिनने का एक आभूषण ।

कंचन—(संज्ञा पु०) स्वर्ण ।

कंचुकि—(संज्ञा स्त्री) कंचुकी,

चोली, अँगिया। स्त्रियों के पहिनने का एक वस्त्र जिससे केवल स्तन ढके रहतेहै, पेट और पीठ खुली रहती है। इसमें चार बंद होते है जो पीठ पीछे बँधे रहते हैं।

कंदुक--(संज्ञा स्त्री०) गेंद।

कँवरे--संज्ञा पु० कुँवर।

कछनी—(सं० स्त्री०) घुटने के ऊपर चढ़ाकर पहिनी हुई धोती।

कदली—(सं० स्त्री) केला। केले का तना जिसकी उपमा कवि लोग जंघाओं के लिये देते हैं। यह पेड़ बरमा, आसाम, बंगाल, और दक्षिण भारत में अधिक होता है। इसके पत्ते लगभग एक फुट चौड़े तथा ४ फु.से ५ फु.तक लंबे हरे रंग के होते है। इसके फल कई प्रकार के होते हैं, बंगाल का चीनिया केला, जो छोटी जात का होता है कुछ खट-मिट्ठा होता है।दक्षिण भारत का हरी छाल का केला जो लगभग ८ से १२ अंगुल तक लंबा होता है बंबई और भुसावल के आस पास बहुत होता है। यह जब पक जाता है तो इसका रंग पीला छोटी-छोटी चित्तियों से आच्छादित हो जाता है तथा चित्तीदार केले के नाम से सम्पूर्ण भारतवर्ष में बिकता है। एक प्रकार का लाल छाल का केला बम्बई प्रान्त में पालघर के पास और होने लगा है जिसे सिंगापुरी केला कहते हैं। पहिले यह सिंगापुर से भारत में आता था। अतः इसी नाम से विख्यात हो गया। इस पेड़ की एक और विशेषता है कि यह एक बार फलता हैं किंतु जब इसका तना काट दिया जाता है तो इसमें से फिर नवीन पत्ते निकल आते हैं और वह फिर एक बार फल देता है। ग्वाल कवि ने अपने हमीर हठ में इसी का उल्लेख करते हुए लिखा है--

सिंह गवन सुपुरुष बचन,
कदलि फरै इक बार।
तिरिया तेल हमीर हठ,
चढ़ै न दूजी बार॥

कनीर--(सं० पु०) देखो कनेर

कनेर--एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ एक-एक बिलस्त लंबी और आध अंगुल से एक अंगुल तक चौड़ी और नुकीली होती है। ये कड़ी, चिकनी और गहरे रंग की होती हैं तथा दो दो पत्तियाँ आमने सामने एक साथ निकलती हैं। डाल में से सफेद दूध निकलता है। फूलों के विचार से यह दो प्रकार का होता हैं। एक

सफेद फूल का कनेर और एक लाल फूल का कनेर। दोनों प्रकार के फूल बारहों महीनों फूलते रहते हैं। और बड़े बिषैले होते है। सफेद फूल का कनेर बड़ा विषैला माना जाता है। फूलों के झड़ जाने पर आठ दस अंगुल पतली-पतली फलियां लगती है। फलियों के पकने पर उनके भीतर से बहुत छोटे-छोटे बीज मदार (आक) की तरह रुई मे लगे रहते हैं। एक प्रकार का और पुष्प कनेर को भांति ही पीले रंग का होता है इसकी पत्तियां छोटी और अधिक चमकीली होती हैं। यह साधारण कनेर से कुछ अधिक बड़ा होता है। इसमें पकनेपर गोल-गोल फल लगते हैं जिसमें गोल गोल चपटे बीज निकलते हैं। इसको भी कनेर ही कहते है। निघंटु रत्नाकर में काली और गुलाबी कनेर का उल्लेख है। व्रज में सफेद और गुलाबी कनेर होती है। लाल, काली और पीली कनेर यहां नहीं होती। सूरदास ने बसंत में कनेर के फूलने का वर्णन किया है तब इसका क्या आशय समझा जाय। कनेर तो बारहों महीने फूलती हैं तब हमें बरबस कुमारसंभव में (३, २८) में आये हुए कनेर के वर्णन की ओर चला जाता है जिसमें बसंत में कनेर के पूर्ण विकसित होने तथा निर्गंध होने का वर्णन मिलता है। सूर का यह वर्णन परम्परागत है।

कपूर—(सं० पु०) कर्पूर।

एक सफेद रंग का जमा हुआ सुगंधित द्रव्य जो वायु मे उड़ जाता है। और जलाने से जलता है। राजनिघंटु और निघंटु रत्नाकर में पोतास, भीम सेन, हिम इत्यादि अनेक भेद माने गये हैं और उनके गुण भी अलग-अलग लिखे हैं। वर्तमान काल में यह दारचीनी कपूरी तथा दारचीनी जीलानी तथा वरास से बनाया जाता है*। दारचीनी कपूरी के पेड़ चीन, जापान, फारमूसा और कोचीन में उत्पन्न होते हैं। भारतवर्ष में भी अब देहरादून और नीलगिरि पर उत्पन्न होते हैं। इसकी लकड़ियों को बर्तन में बंद कर इस प्रकार पानी में रखते हैं कि पानी से इसका लगाव नहीं होता। बर्तन के नीचे आग जलाई जाती है। आग लगने से लकड़ियों में से कपूर उड़ कर ढक्कन में जम जाता है।

*हिन्दी कवियों ने इस की उत्पत्ति से मानी है।

दारचीनी जीलानी का पेड़ पश्चिमी घाट, कोंकन, टनासरम, और वर्मा आदि स्थानों में होता है। और इसके पत्ते तेजपात और छाल दारचीनी है।

बरास का पेड़ बोर्नियों और सुमात्रा में होता हैं। इसका पेड़ बहुत ऊँचा होता है। इसके सौ वर्ष से अधिक पुराने पेड़ के बीच से तथा गाँठों में से जमा हुआ कपूर का डेला निकलता है। इसके पत्तों छिलकों के नीचे से भी कपूर निकलता है। इसके प्रतिरिक्त पेड़ में छेदा लगा कर भी दूध निकालते हैं जो जम कर कपूर हो जाता है। यही कपूर बरास तथा भीमसेनी के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीनों ने इसी को अपक्क कहा है—

कपूर स्वाद में कड़ुवा, सुगंध में तीक्ष्ण और गुण में शीतल होता है। वह कृमिघ्न और वायु शोधक होता है और अधिक मात्रा में खाने से विष का काम करता है। उनका विश्वास हैं कि स्वाँति नक्षत्र में बर्षा होने से जो बूँदें केले में पड़ जाती हैं उसी से कपूर उत्पन्न होता है इसका वर्णन अनेक कवियों ने किया है। जायसी ने पद्मावत में लिखा है—

'पढ़े धरनि पर होय कचूरु।
पड़े कदलि मँह होय कपूरु॥

इसी स्वाँति बूंद का प्रभाव वर्णन करते हुए रहीम ने भी अपने ऐक दोहे में इसकी पुष्टि की है—

केरा करै कपूर कर,
चातक जीवन जोय।
ऐतो बड़ो रहीम जल,
ब्याल बदन बिष होय॥

ब्रज में कुछ लोगों का विचार है कि केले का कपूर साधारण कपूर नहीं, उससे निकलने वाला 'रस कपूर' है जो एक प्रकार का बिष होता है। रस कपूर जहा औषधि के रूप में प्रयोग में आता है वहां खोटे सोने (ऐसा स्वर्ण जिसमें मेल अधिक होता है तथा निहानी पर रखकर चोट देने फट जाता है) के साथ मेल देकर गला लेने से उसका फटने का डर जाता रहता है। इसी विषत्व के कारण 'कपूर खाना' का प्रयोग विष खाने के अर्थ में प्रयोग में आता है। 'किशोर' ने अपने एक कवित्त में इसी का वर्णन किया है—

एहो चंदबंदनी तैं कलंकी कियो चंद तो
बोलौ ब्रचचंद सो 'किसोर' बैठ्यो हृदली।

सूँड़ छार डारै गजराज से करै अगर
सुंडीक बुड्यो री कपूर खायो कदली।

सूरदास ने (एक पद) में कहा है—

'मोदक माँझ कपूर,
ग्वालिनि मन हरि हो'

मे कपूर का वर्णन किया है। यहाँ कपूर के गुणों पर विचार करने से ही इस 'ग्वालिनी' की सुंदरता समझ में आ सकेगी।

कपोत—(संज्ञा पु०) कबूतर।

कबरी—(संज्ञा स्त्री०) चोटी।

कमल—(संज्ञा पु०) पानी में होने वाला एक पौधा जो संसार के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। यह झीलों, तालाबों, नदियों और गड्ढों तक में उत्पन्न होता है। इसका पेड़ बीज से जमता है। रंग और आकार के भेद से इसकी बहुत सी जातियाँ हैं, पर अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग के कमल देखने में आते हैं। कहीं कहीं पीला कमल भी देखने में आता है किंतु वह भारतवर्ष मे नहीं होता। वह उत्तरी अमरीका, साइबेरिया और जर्मनी में होता है। कमल की पेड़ी पानी में जड़ से पाँच छह अंगुल के ऊपर नहीं आती। इसकी पत्तियाँ गोल-गोल थाली के आकार की होती है और बीच से पतले डंठल में जुड़ी रहती है। इन पत्तियों को पुरइन कहते है। यह पत्ते गोल बड़े-बड़े, प्याले के आकार के अरबी के पत्तों की तरह होते है इन पर पानी नहीं ठहरता। इसके नीचे का भाग जो पानी की तरफ रहता है, बहुत नरम और हलके रंग का होता है, पर ऊपर का भाग चिकना, चमकीला और गहरे हरे रंग का होता है। कमल चैत बैसाख से फूलने लगता है और सावन भादों तक फूलता है। फूल लंबे डंठल के सिरे पर होता है तथा डंठल या नाल में बहुत से महीन छेद होते है। डंठल या नाल से बहुत ही महीन सूत निकलता है जिसे बट कर मंदिरों में जलाने की बत्तियाँ बनाई जाती है। प्राचीन काल में इसके कपड़े भी बनाये जाते थे जिसके प्रयोग से ज्वर दूर हो जाता था। कमल की कली प्रातःकाल खिलती तथा इसकी सुगंधि भौंरों को बड़ी पसंद है। मक्खियाँ इसमे रस लेकर मधु संचय करती तथा यह मधु नेत्र रोगों को बड़ा लाभ दायक होता है कमल की

पत्तियों के झड़ जाने पर उसके मध्य का कोश जो छत्ते के आकार का होता है बढ़ने लगता है और थोड़े दिनों में उसमें बीज पड़ जाते है जो लंबोतरे होते हैं। पकने पर काले रंग के हो जाते हैं। यह बीज कमल गट्टा कहलाते हैं। कच्चे कमल गट्टे को लोग खाते तथा सूखे दवा के काम में आते हैं। कमल गट्टों में छेद करके उसकी माला भी बनाई जाती है जो लक्ष्मी का भजन करने के काम आती है। ब्रज में ऐसी धारणा है कि कमल गट्टा की माला पर श्री मंत्र का जाप करने से अतुल धन की प्राप्ति होती है।

यहां प्राचीन काल में अत्यधिक कमल उत्पन्न होते थे किंतु रेगिस्तान के ब्रज की ओर बढ़ आने से अब यहां कमल बहुत कम होने लगे हैं किंतु फिर भी पांडव गंगा जो कोकिला वन से बठैन जाते समय रास्ते मे पड़ता है, नन्दगांव मे टेड़ कदब के पास उत्पन्न होते हैं तथा परखम के आस पास रक्त कमल तथा स्वेत कमल खूब होते हैं। तथा मदिरों में ठाकुर जी के शृंगार के लिये इन्हीं स्थानों से मंगाये जाते है। नील कमल काश्मीर के उत्तर, तिब्बत तथा कहीं-कहीं चीन में उत्पन्न होता है, इसे इंदीवर तथा नीलोत्पल भी कहते हैं। अतः ब्रज में इन्हीं दो प्रकार के कमलों में उत्पन्न होने की आशा की जा सकती है। इसलिये सूर ने जहां केवल कमल शब्द का प्रयोग किया है वहां प्रसंग से लाल अथवा स्वेत कमल ही अर्थ लेना उचित होगा। कहीं-कहीं दोनों ही अर्थ लगाने होंगे।

कमोरी—(संज्ञा स्त्री०) चौड़े मुँह का मिट्टी का वर्तन जिसमें दूध-दही रखा जाता है। इसे यहाँ तौला भी कहते हैं। एक प्रकार का पात्र जिसका होली में रंग भर कर पुरुष स्त्रियों पर डालते हैं यह एक बालिश्त लंबी तथा मुख कलम की भांति का होता है।

करनि-नी—(संज्ञा स्त्री) हथिनी।

करषना—(क्रिया सं०) बल पूर्वक खींचना।

कलवल—(पु०) उपाय, दांव पेंच, युक्ति।

कलोलियाँ—(पु०) कलोल, आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा।

कवच--(पु०) जिरह-बख्तर, लोहे की कड़ियों के जाल का बना हुआ पहिनावा जिसे योद्धा शत्रुओं के शास्त्र प्रहारों से रक्षा को युद्ध के समय पहनते थे।

कानी--(स्त्री०) मर्य्यादा, इज्जत।

काम--(पु०) कामदेव।

किन्नरि—(स्त्री) किन्नरी वीणा। किन्नरी वीणा कोमल स्वर वाली वीणा है। इसके विविध रूपों का वर्णन प्राचीन संगीत ग्रंथों में मिलता है। 'संगीत पारिजात' के अनुसार इसमें तीन तूँवा तथा दो तार लगे रहते हैं। इसमें अंकुश के समान मेरु होता है। तंत्री का अंतर सात अंगुल होता है, जो तिरछा होता है तथा दोनों तार एक साथ उलटे बजाये जाते हैं।

'आइने अकबरी' में लिखा है कि किन्नर वीना के सदृश वाद्य है किंतु इसका दंड अधिक लंबा होता है जिसमें तीन तूँवा तथा दो तार लगे होते हैं।

किन्नरि की जोरी--(स्त्री०) इसमें किन्नरी का प्रयोग ताल वाद्यों के साथ किया गया है। 'किन्नरि की जोरी' शब्द यह भी बतलाता है यह किन्नरी की जोड़ी कहलाने वाला भी कोई ताल वाद्य है। निश्चय ही यह किन्नरी, किन्नरी वीणा से पृथक वाद्य है जिसको ब्रज के कर्करी. किरकिरी, किंगरी और किन्नरी भी कहते हैं। पक्के लोहे की छड़ को त्रिकोणात्मक मोड़ कर इसे बनाया जाता है फिर एक लोहे की छड़ से ही बजाया जाता है। होली के हुल्लड़ में जहां किन्नरी की वीणा के कोमल स्वर का वर्णन है वहां किन्नरी की मधुर ध्वनि भी धमारों के साथ कभी भी सुनी जा सकती है।

कीर--(पु०) तोता।

कुंतल--(स्त्री०) केश।

कुंद-(पु०)एक प्रकारका स्वेत पुष्प

कुच—(पु०) स्तन, डरोज।

कुटिल—(वि०) बक्र, घुंघराले।

कुतुहल—(पु०) कौतुक, क्रीड़ा।

कुमकुम—(स्त्री०) केशर, रोली।

कुमकुमा—(पु०) लाख का बना हुआ एक प्रकार का पोला लट्टू जिसमें गुलाल अथवा अबीर भरकर

होली में एक दूसरे पर मारते हैं इसके टूटने से गुलाल अबीर इधर-उधर बिखर जाता है। (२) रोली।

कुमदनी—(स्त्री०) कमलिनी, कुई। कमल की एक जाति विशेष जिसमें मधुकोष नहीं होता। केवल केशर के लंबे-लंबे तंतु रहते हैं इसके प्रायः चार या छह पत्र होते हैं में वर्षा ऋतु के अंत में विशेषतः कामवन की ओर जहाँ [illegible] में पानी भर जाता है अत्यधिक संख्या में उत्पन्न होती है। बालक इनकी माला बना कर बड़े चाव से पहिनते हैं। कवियों ने जहाँ कमल का पति सूर्य माना है, वहाँ कमदनी का पति चन्द्रमा माना गया है। अतः यह कथा प्रसिद्ध है कि चन्द्रमा कमल को शोकित करने वाला तथा सूर्य कुमदनी को सकुंचित करने वाला है।

कुरंग—(पु०) हिरन, मृग।

कुलटी—(स्त्री) कुलटा, छिनाल, व्यभिचारिणी।

कुलाहल—(पु०) कोलाहल, हल्ला, चिल्लाहट।

कुसुम—(पु०) पुष्प, फूल।

कुसुमी—(वि०) कुसुम के रंग की कुसुंभी, लाल रंग की।

विशेष—कुसुंभ का पौधा पांच, छह फुट लम्बा होता है जो रबी की फसल के साथ खेतों में बीज या फूलों के लिये बोया जाता है। इसकी दो जातियां हैं एक जंगली और कंटीदार होते हैं इनके बीजों से तेल निकलता है इसमें फूल पीले, लाल, गुलाबी और सफेद होते हैं। दूसरी जाति में या तो कांटे होते ही नहीं अथवा बहुत कम होते हैं। इसके बीजों से तेल तथा फूलों से रंग बनाया जाता है। इसमें फूल पीले या नारंगी होते है और कभी-कभी बैंगनी और गुलाबी रंग के भी फूल पाये जाते है। जब वृक्षों पर फूल आने लगते हैं तो उनको नित्य प्रति प्रातःकाल चुन लिये जाते हैं। चुने हुए पुष्पों को एक कपड़े में रख कर विशेष खार मिलाकर उसमें पानी डालते है तो उसमें से पीले रंग का पानी निकलने लगता है। पीछे इसमें खार मिलाने से वह लाल रंग का हो जाता है।

कूट—(पु०) छल, कपट, झूँठ, कठिनता।

कृपन—(पु०) कृपण, कंजूस।

केकी—(पु०) मोर।

केतकि-की—(स्त्री०) एक प्रकार का छोटा झाड़ या मौदा जिसकी पत्तियाँ लंबी, नुकीली, चिपटी, कोमल और चिकनी होती है। केतकी दो प्रकार की होती है, एक स्वेत केतकी दूसरी पीत केतकी। सफेद केतकी को हिंदी में केवड़ा तथा पीली को स्वर्ण केतकी कहते हैं। बरसात में इसमे फूल लगते है जो लंबे, सफेद रंग के, और बहुत सुगधित होते हैं। इसका फूल बाल की तरह होता है और ऊपर से लंबी लंबी पत्तियों से ढका होता है। फूल से अतर व सुगधित जल बनाया जाता है और उससे कत्था भी बनाया जाता है। एक दोहे में कहा गया है कि भौंराइसके तीक्ष्ण कंटक जान कर भी इसे नही छोड़ता—

'भौंरं न छोड़े केतकी, तीखे कटक जान।

पुराणों के अनुसार यह पुष्प शिवजी पर नहीं चढ़ाया जाता। सूरदास ने एक पद में केवड़ा और केतकी दोनों का उल्लेख किया है वहाँ केतकी का अर्थ स्वर्ण केतकी लेना चाहिये।

केवरा—(पु०) केवड़ा, विशेष देखो केतकी।

कोक—(पु०) चक्रवाक, चकवा एक प्रकार का छोटा सा काला पक्षी जो जल के किनारे जोड़े में रहता है। इस पक्षी के विषय में यह प्रसिद्ध है कि सूर्यास्त के पश्चात् यह दोनों साथ साथ नहीं रहते और प्रातः काल फिर पास-पास आ जाते है। कवियों ने प्रेमी युगल की वियोगावस्था का वर्णन इन्हीं दो पक्षियों के प्रतीक रूप मे किया है। इनके विषय में तो यहाँ तक प्रसिद्ध है कि यदि वे एक ताल के किनारे होते है तो सध्या समय एक इस किनारे पर और दूसरा उस किनारे पर हो जाता है। ब्रज की लोक कहानियों में अनेक स्थानों पर वर्णन आता है जिसमें कहानी का नायक किसी एक तालाब के किनारे रात्रि के समय पहुँचकर सो जाता है जहाँ चकवा चकवी रहते हैं। चकवी चकवा से कहती है, 'हे चकवा, कोई बात कहो जाते रैन कटै'। तब चकवा उस सोये हुये प्राणी का परिचय देते हुए उसकी कठिनता का हल बताता है जिसके द्वारा उसको लक्ष-प्राप्ति होती हैं।

कोकिल—(स्त्री०) कोयल।

काले रंग की एक प्रकार की चिड़िया जो आकार में कौवे से कुछ छोटी होती है। यह मैदानों में बसंत ऋतु के आरंभ में आ जाती है तथा वर्षा के अंत तक रहती है। इसकी आँखें लाल, चोंच कुछ झुकी हुई, और दुम चौड़ी और गोल होती है। इसका स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है। यह कौवे के घोंसले में अपने अंडे दे आती है और जब कौओं द्वारा सेए जाकर बच्चों के पर निकल आते हैं तो वह अपनी बोली सुनाकर उन्हें उड़ा ले जाती है! इसी से इसका नाम अन्यपुष्ट अथवा परभृत कहते हैं।

यह संसार के सभी भागों में पाई जाती है और इसके नाम भी इसके स्वर के अनुकरण पर बने हैं। बसंत के साथ ही इसका वर्णन आता है। यह वृक्षों में के पत्तों में छिपकर जब गाती है तो सुनने वालों का ध्यान बरबस उसी ओर चला जाता है।

कोध—(स्त्री०) कोद, ओर।

कोल—(पु०) गोद, उत्संग।

कोस—(पु०) कोश, संपुट। उदा०—'मानहु कमल कोस अलि अंतर भंवर भ्रमत बिनु प्रात।'

कौंध—देखो कोध।

ख

खंडिता—अन्य स्त्री संभोग सूचक असाधारण चिन्ह सहित नायक के प्रभात आगमन से क्रोधित होने वाली स्त्री को खंडिता कहते हैं।

खंजन—(संज्ञा पु०) एक पक्षी।

खग—(पु०) पक्षी।

खभौ—(पु०) खिरनी की जाति का एक वृक्ष।

खरे—(वि०) खड़े।

खूँट—(पु०) किनारा, कोना।

खेर—(पु०) खेरा, छोटा सा गाँव।

खेलार—(पु०) खिलाड़ी।

खोरि-री—(स्त्री०) गली।

ग

गंड—(पु०) गाल के ऊपर की जगह।

गगन—(पु०) आकाश।

गंजदंती—(वि०) हाथी दाँत का।

गति—(स्त्री०) दशा, अवस्था।

गँवारी—(स्त्री०) गाँव की रहने वाली स्त्री। असभ्य स्त्री।

गाँड – (पु०) गाँव ।

गाजना--(अ०) चिल्लाना । प्रसन्नता सूचक शब्द करना ।

गात—(पु०) शरीर ।

गुंज—(स्त्री०) गुंजार, मधुर ध्वनि ।

गुदर—(पु०) हाजिरी ।

गुलचा—(पु०) बहुत ही हलके हाथ से गाल पर आघात करना ।

गेंडुक—(स्त्री०) गेंद, कंदुक । होली के अवसर पर मोम की बडी-बड़ी पोली गेंद बनाई जाती हैं उन्हें रंग के पानी से भर कर तथा मोम से मुँह बंद कर ऐक दूसरे पर फेंकते हैं । यह गेंद देह का स्पर्श कर फूट जाती तथा कपड़ों को रंग से रंग देती है । कुमकुमा और इस गैंद में यह एक बड़ा अन्तर है कि कुमकुमा में तो स्थूल रंग गुलाल इत्यादि भरे जाते हैं किंतु इसमें द्रव्य रंग भरे जाते हैं । पद में इसी प्रकार की गैंद का वर्णन है—

'प्रभु हँसि कै गेंदुक दई चलाइ,
मुख पट दै राधा गई बचाइ ।

गोमुख—(पु०) एक प्रकार का धातु का बना सुषिर वाद्य जिसके मुख पर गो की आकृति बनी रहती है ।

गौनना—(पु०) गमन ।

घ

घोष—(पु०) अहीरों के रहने की बस्ती ।

च

चंग—(पु०) ब्रज के खयाल बाजो का यह प्रसिद्ध वाद्य चक्राकार, स्थूल चमड़े से मढ़ा हुआ होता है । चार अंगुल चौड़े लकड़ी के घेरे से मढ़ा हुआ यह वाद्य सोलह से बीस अंगुल तक व्यास का होता है । यह वाद्य बाँये हाथ से पकड़ कर छाती के पास ले जाकर दाहिने हाथ से बजाया जाता है ।

चंपक—(पु०) चंपा । चंपे का वृक्ष बहुत बड़ा और सुंदर होता है । इसकी छाया सघन होती है । पुष्प अत्यंत सुगंधित और पीले रंग के होते हैं, जो प्रायः ¾ इंच लंबे होते हैं । फूल के अंदर बारीक केशर होती है । सम्राट जहाँगीर ने अपनी आत्म कथा ने लिखा है कि 'चंपे का फूल निहायत खुशबूदार और सुंदर होता है । इसके पत्ते और शाखाएँ खूब होती हैं । मौसम के समय एक ही वृक्ष

समस्त बगीचे को सुगंधित कर देता है। इसके बीज छोटे और मटर दाने के बराबर होते है। इनके बीजों से एक प्रकार का गाढ़ा तैल निकलता है। इसके फूलों से रंग निकाला जाता है और इनमे से एक प्रकार का उड़न शील तैल भी प्राप्त होता है। कवि परम्परा के अनुसार इस पुष्प पर भौंरा नहीं बैठता। यह आजकल ब्रज में उत्पन्न नहीं होता। सूरदास के समय में होता था अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता।

चकवा—देखो कोक।

चकोर—(पु०) यह पक्षी तीतर जाति का है तथा आकार में भी प्रायः उतना ही बड़ा होता है। इस पक्षी की आँखों के किनारे लाल रंग के होते है। तथा कुछ बड़े और नोंकदार होते हैं। इसी से वह सहज ही में पहिचान लिया जाता है। यह आकाश में पूर्ण चन्द्रमा को देखकर फड़फड़ाता तथा कोयले की आग की चिनगारियों को सहज ही खा जाता है। हरिद्वार में हमने इस पक्षी को पिंजड़े में बंद कितने ही व्यक्तियों के पास देखा है।

चख—(पु०) नेत्र।

चटुल—(पु०) सुंदर चंचल।

चमेली—(स्त्री०) एक प्रकार की लता जिसमें स्वेत रंग के इसी नाम के फूल लगते है। चमेली दो प्रकार की होती है एक स्वेत और दूसरी पीली। दोनो ही प्रकार की चमेली में बैसाख के अंत मे फूल आ जाते है परंतु पीली चमेली में कुछ पहिले फूल आना आरम्भ हो जाता है। स्वेत चमेली ब्रज मे बहुत होती और पीली बहुत ही कम। किसी-किसी के बाग में कभी-कभी दिखाई दे जाती है। इसका पुष्प चौथाई इंच के लगभग लंबा होता है तथा इसमें आठ दल होते हैं। इसकी खेती तेल के लिये की जाती तथा जौनपुरी चमेली का तेल अति प्रसिद्ध है।

चर—(पु०) दूत।

चवाई—(स्त्री०) चवाव, बदनामी, निंदा।

चहुँधा—(वि०) चारों ओर।

चिकुर—(पु०) केश।

चिबुक—(स्त्री०) ठोड़ी।

चीर—(पु०) वस्त्र।

चुनि—(स्त्री०) चुन्नी, रत्न विशेष।

चूनरी—(स्त्री०) ओढ़नी।

चूरो—(पु०) चूड़ा। लाख

अथवा हाथी दाँत के बने हुए वृताकार आभूषण जो बड़े से छोटे आकार के बनाये जाते हैं व हाथ में सौभाग्यवती स्त्रियाँ पहिने रहती हैं।

चोख—(स्त्री) शीघ्रता, तेज।

चौवा—(संज्ञा पु०) अगर को चुआकर बनाया हुआ काले रंग का गाढ़ा द्रव्य।

चौकस—(पु०) होशियार।

चौहटें—पु०) चौक, चौराहा।

छ

छनेक—एक क्षण।

छपाकर—(पु०) चन्द्रमा।

छबीलो—(वि०) सुंदर।

छाक—(स्त्री०) कलेवा, वह भोजन जो चरवाहे आदि दोपहर को काम से छुट्टी पाकर करते हैं।

छाप—(स्त्री०) मुहर आदि का चिन्ह, मुद्रा।

छिटकाना—(अ०) छितराना, चारों ओर बिखेरना।

छेंकना—स०) घेरना।

ज

जंत्र—(पु०) एक प्रकार की वीणा जिसका दंड प्रायः एक गज लंबा होता है। इसके ऊपर नीचे दो तूँबे लगे होते थे। दंड पर सोलह पर्दे स्वर स्थान बताने को तथा पाँच तार लगते थे। स्वरों को ऊँचा-नीचा करने के लिये पर्दों का सरकाया जा सकता था। यह वाद्य अब दिखाई नहीं पड़ता किंतु आइने अकबरी में इसका उल्लेख है।

जरित—(वि०) जड़ा हुआ।

जबर—(वि०) शक्तिशाली।

जरद—(वि०) पीला।

जलधर—(पु०) मेघ, बादल।

जवादि—(पु०) गंध बिलास के शरीर से निकला एक सुगंधित द्रव्य, गोरोचन।

जस—(पु०) यश, कीर्ति।

जरित—(वि०) जड़ी हुई।

जाचक—(पु०) भिखारी।

जाम—(स्त्री) यामिनी रात्रि।

जुवती—(स्त्री) युवती, तरुणी।

जुही—(स्त्री) एक प्रकार का चमेली की जाति का पुष्प।

जूथ—(पु०) समूह, झुंड, भीड़।

जेरी—(स्त्री०) जिस प्रकार त्रिशूल के तीन फल गुड़े रहते हैं उसी प्रकार की हरे वृक्ष की तनिक मजबूत टहनी लेकर उसे दूसरी ओर

से भी एक डोरी से बांध लिया जाता है। यह जेरी कहलाती है। यह प्राय: एक गज लम्बी होती है तथा उन तीनों टहनियों में से किसी एक को मध्य से हुरियारे बाँये हाथ से पकड़ लेते हैं और जब ब्रज-बनितायें इन पर लट्ठों से प्रहार करती हैं तो यह जेरी सिर पर जाकर उनकी रक्षा करती है। हरी शाखा की बनी हुई होने के कारण यह डंडा पड़ने से लच जाती है किंतु टूटती नहीं। कहीं-कहीं सिर की रक्षा के लिये हिरन के सींग तथा ढाल का भी प्रयोग करते हैं किंतु जाव और बठैन नामक ग्रामों में अब भी जेरी का ही प्रचलन है।

जोरी—(स्त्री०) जोड़ी।

झ

झँवरा—(वि०) घना।

झकोर—(पु०) झोंका।

झरोखा—(पु०) झझरीदार खिड़की, गवाक्ष।

झाँझि—(पु०) इस नाम के वाद्य का उल्लेख संगीत पारिजात में नहीं मिलता किंतु संगीत दामोदर में इसका उल्लेख आता है। साथ ही ब्रज में कीर्तन में भी इसको बजाया जाता है। यह काँसे के बने हुए दो आठ-अंगुल से सोलह अंगुल तक वृताकार नग होते हैं जो मध्य में स्तनवत् दो अंगुल गहरे होते हैं। उनके मध्य में एक० एक छेद होता है जिसमें एक-एक डोरी निकली होती है जिसमे हाथ की मूट्ठी से पकड़ने योग्य कपडा बांध लिया जाता है-तथा एक-एक पल्ला पकड़ कर दोनों हाथों से बजाया जाता है।

झालरि-री—(स्त्री०) इसे झल्लरी भी कहते हैं। संगीत पारिजात के मतानुसार यह अठारह अंगुल व्यास की, अठारह पल भारी, मध्य से दो अंगुल गहरी, डोरी से युक्त होती है तथा हाथ ढीला करके बजाई जाती है, किंतु ब्रज में घड़ियाबल को ही झालरि कहते हैं यह काँसे की बनी हुई बारह से सोलह अंगुल तक व्यास की लगभग एक सूत मोटी चद्दर होती है जिसमें सिरे पर एक छेद होता है जिसमें एक डोरी लगी रहती है। इस डोरी को बाँये हाथ से पकड़ कर दाहिने हाथ से एक मोगरी से बजाया जाता है।

झिल्लरी, झिली-देखो झालरि।

भूमक—(पु०) एक प्रकार का गीत जिसको मनोरा भूमक भी कहते हैं तथा होली के अवसर पर गाया जाता है।

ब्रज में भूमक नामका एक नृत्य भी होता है। यह एक मण्डलाकार नृत्य है जिसके मध्य में एक स्त्री स्वतंत्र रूप से नृत्य करती है तथा उसके चारों ओर स्त्रियां मंडल बना कर नृत्य करती हैं। इन स्त्रियों के नृत्य में एक यह विशेषता होती है कि ये लोग दोनों हाथों की अंगुलियों को विपरीत दशा में रखकर ताली बजाती जाती है तथा झूमाझूम कर वे प्रायः एक दूसरे से टकरा कर मंडलाकार घूमती जाती हैं।

इसी भूमक व झूमरमेंझूमने एक वर्णन एक अज्ञात कवि ने इस प्रकार किया है—

वह नाचन आलित के गन की,
झूकि झूमर दे कर झारन की।
सुधि आए रहै न कछू सुधि है,
बिनु बालनी भोंह बिहारन की।
यह हूलसी झूलनी भूमक की,
दुलरी दुति नाभि निहारन की।
वह चूनरी स्याम सँभारन की,
छल सौकुच कंच दुघारन की॥

इस नृत्य को झूमर भी कहते हैं।

झूमका—(पु०) गुच्छा। ब्रज के मंदिरों में जब हिंडोले पड़ते हैं तब एक बहुत बड़ा झूमका-आभूषण के रूप का एक फूलों का बना हिंडोले के मध्य में लटकाया जाता है। यह उसी आभूषण के नाम के आधार पर ही झूमका कहलाता है।

झोरी—(स्त्री०) झोली।

झोल—(वि०) ढीले ढाले. ढ-र्थ।

ट

टीका—(पु०) बिंदी, तिलक।

ठ

ठाँव—(पु०) स्थान।

ठाहर—पु०) स्थान, रहने या टिकने का स्थान, डेरा।

ड

डग—(पु०) कदम।

डफ़—(पु०) यह पारसी शब्द 'दफ़' का अपभ्रंश है। छह अंगुल चौड़ी पतली लकड़ीका घेरा प्रायःकरास का होता है एक से डेढ़ हाथ व्यास का पतली खाल द्वारा मढ़ा जाता है यह चंग की भाँति ही बजाया जाता है।

ब्रज के कवियों ने इस डफ का वर्णन इतना अधिक किया है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि बिना डफ बजे हुए होली का कोई महत्व ही नहीं है। आज भी गाँवों में तथा मंदिरों में बसंत पंचमी से ही लोग डफ निकाल कर उस पर होली गाना आरंभ कर देते हैं और होली बीतने पर उसे उठा कर रख देते हैं फिर साल भर बाद ही डफ के दर्शन होते हैं। इसीलिये ब्रज के एक लोक गीत में जो होली की समाप्ति पर गाया जाता है, कहा गया है—'डफ धरदें यार गई परकी'।

डिमडिम—(संज्ञा स्त्री०) डिमडिमी डमरू के आकार की किंतु उससे बहुत छोटी, खाल की पतली झिल्ली से मढ़ी रहती है यह झिल्ली किसी डोर से नहीं बँधी रहती किंतु सरेस से मुख पर चिपकी रहती है। मध्य भाग में एक डोरा बँधा रहता है जिसके दोनों सिरों पर दो गाँठे होती है। यह मध्यमा और अँगूठे द्वारा पकड़ कर बजाई जाती है।

ढ

ढरना—(क्रि० अ०) ढरका, बहना।

ढरोल—(कि० वि०) ढलकवाँ।

ढीढि—(वि०) धृष्ट, शोख।

ढूकना—(क्रि० अ०) टूट पड़ना।

ढोटा—(पु०) लड़का, पुत्र।

ढोरी—(स्त्री०) अहीरों का पात्र विशेष जिसे दूध ठंडा करने के काम में लाते हैं। यह यहाँ दो प्रकार का देखने में आता है। एक जिसका मुख चौड़ा और पेट गोल तथा छोटा होता है। दूसरे एक कुछ गहरे प्याले में एक लड़की का दस्ता लगा रहता है। यह हलवाइयों के यहां कढ़ाई में से दूध निकालने अथवा किसी गरम द्रव्य को बाहर निकालने के काम में आता है। इस पात्र की यह विशेषता होती है कि इसमें भरा हुआ पदार्थ एक साथ गिरा दिया जा सकता है।

ढोल—(पु०) फारसी शब्द दुहुल का रूपांतर। पोली लकड़ी का बेलनाकार वाद्य जिसकी लम्बाई लगभग २० इंच तथा मुख का व्यास १२ से १५ इंच तक होता है। दोनों मुख चमड़े से मढ़े हुए तथा डोरियों से कसे रहते हैं। ढोल दाहिने हाथ की लकड़ी तथा बाँये हाथ की हथेली से बजाया जाता है।

त

तन—(वि०) ओर।

तनी—(स्त्री०) बंद। डोरी की तरह बटा हुआ वह कपड़ा जो अँगरखा, चोली आदि में सिरों को बाँधने के काम आती है।

तमाल—(पु०) एक वृक्ष।

तमोरे—(पु०) तमोल, पान का बीड़ा।

तर, तरैं—(वि०) नीचे।

तरनि—(स्त्री०) तरैयाँ, तारे

तरनि-नाथ—(पु०) चन्द्रमा।

तरुन—(पु०) युवा।

तरुनी—(स्त्री०) युवती।

तावरो—(वि०) बेहोशी।

ताव—देखो ताल।

तारना—(स० क्रि०) छुड़ाना।

ताल—(पु०) स्तनवत काँसि के बने हुए छै अंगुल व्यास का यह दोपला वाद्य डोरियों से बंधा रहता है। ब्रज के चतुर्वेदियों की चौपाइयों में आज भी प्रचलित है।

तिपाई को लँहगा—(पु०) कलीदार लँहगा।

तुंबुर—(पु०) तुंबुरु वीणा, तानपूरा।

तृन—(पु०) तृण, तिनुका।

तृषा—(स्त्री०ा) प्यास।

तोरन—(पु०) तोरण, घर या नगर का बाहरी फाटक। बंदनवार।

त्रिदस—(पु० देवता।

थ

थपना—(स०) स्थापित करना जमाना।

द

दंपति—(पु०) पति-पत्नी का जोड़ा। भक्तिकालीन साहित्य में जहाँ कहीं भी इस शब्द का प्रयोग आया है वहाँ वह प्रिया-प्रीतम, राधा-कृष्ण के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

दच्छिन-चीर—(पु०) दक्षिण दिशा से आने वाला वस्त्र। यह शब्द लोक-गीतों में भी बहुत प्रचुरता से प्रयोग में आता है किंतु यह दच्छिनी चीर कैसा होता था इस के विषय में कोई ठीक बात मालुम न हो सकी। वर्तमान काल में जो दक्षिण की ओर से जो हथ करघे के वस्त्र आते हैं वे सब बहुत बारीक होते हैं तथा प्रायः चारखाने के होते हैं। इनमें जो

अच्छी जाति का कपड़ा आता है उनमें स्वर्ण चढ़े चाँदी के वारीक तार भी लगे रहते हैं। संभव है इसी कारण यहां यह वस्त्र पंसद किये जाते हों तथा दच्छिनी चीर के नाम से प्रसिद्ध हो।

दधि—(पु०) दही।

दरस—(पु०) दर्शन।

दल—(पु०) समूह।

दव—(पु०) अग्नि। बन में अपने आप लग जाने वाली दवाग्नि।

दाउँ—(पु०) दाव, उपयुक्त समय, अनुकूल अवसर।

दागना—(स०) दग्ध करना, जलाना।

दामिनी—(स्त्री०) दामिनी, बिजली।

दिवानी—(वि०) पागल।

दुंदुभि—(पु०) नौबत। जिस प्रकार तबले में दो नग होते हैं उसी प्रकार दुंदुभि में भी दो नग होते है,एक बड़ा और एक छोटा नगाड़ा बड़े नगाड़े का शब्द गंभीर तथा छोटे का महीन होता है। छोटा नगाड़ा झील अथवा अधौटी कहलाता है। शंकु-आकार की लकड़ियों से बजाया जाता है।

दुइज—(स्त्री०) द्वितीया, दूज।

दुरना—(अ०) छिपना।

द्याय—(क्रि० वि०) दिलाकर।

द्रुम—(पु०) वृक्ष, पेड़।

द्वात—(स्त्री०) दवात, मसि पात्र।

द्वादस आभरण—स्त्रियों के पहिनने के बारह आभूषणों।

ध

धन—(पु०) धनु, धनुष।

धपना—(अ०) झपटना, लपकना।

धमारि—(पु०) धमार, होली के गाने का एक राग।

धरना—(क्रि० स०) पकड़ना।

धरनी—(स्त्री०) धरणी, पृथ्वी।

धौं—(अव्य०) एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहिले लगाया जाता है जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और सशय का भाव अधिक रहता है। न जाने। मालुम नहीं।

धाँगरी—धींगरी, युवा स्त्री।

धातु—(पु०) धातु राग, मेरु,

इंगुर, इत्यादि रंग जो धातुओं से निकलते हैं।

धूरि—(स्त्री०) धूल।

धोरी—(स्त्री०) मुखिया. प्रधान।

धौलागिरि—(पु०) हिमालय पर्वत की एक प्रसिद्ध चोटी जो सदा बर्फ से ढकी रहती है। स्वेत पर्वत।

न

नक—(पु०) नाक, स्वर्ग।

नव—(वि०) नौ।

नव निधि—

महा पद्म पद्म, शंख, मकंद, कच्छप, मुकुन्द, कुंद, नील और खर्व।

(काव्य प्रभाकर पृ० ७१५)

नव रतन—नव रत्न।

हीरा, पन्ना, मणिक, नीलम, पुखराज, गोमेद, मोती, मूँगा।

नव सत—सोलह शृंगार। सोलह शृंगार काव्य में इस प्रकार माने गये हैं—

शौच, उबटन, स्नान, केश, बंधन, अंगराग, अंजन, जावक, ताम्बूल, बसन, भूषण, सुगंध, पुष्प-हार, कुंकुम, भाल तिलक और चिबुक विंदु।

भगवत कवि ने इस प्रकार सोलह शृंगारों का वर्णन किया है—

सुचिता सील सनेह गति,
चितवन बोलन हाँसि।
कच गूँथन श्रीबंता सुभ,
भाल तिलक सुखरासि॥

भाल तिलक सुखरास,
दृगन अंजन अति सोहै।
बीठी बदन सुदेस,
चिबुक मसकन मन मोहै।
या विधि मेंहदी अंगराग,
भगवत मन रुचिता।
ये सोरह सिंगार,
मुख्य तामें वर सुचिता॥

नाई—(क्रि० वि०) उड़ेल कर।

नाह—(पु०) पति।

निकुंज—(पु०) लता-गृह। ऐसा स्थान जो घनी लताओं से घिरा हो।

निखंग—(पु०) तरकश, तूणीर।

निचोड़—(क्रि०) निचोड़ना।

निचोल—(पु०) स्त्रियों की ओढनी अथवा चादर

निवारी—(स्त्री०) निवाड़, जूही की जाति का एक पुष्प जिसके दल चमकी से पतले तथा मिनली में चार होते हैं।

निमिष—(पु०) पलकों के गिरने में समय लगता है वह समय।

निरंजन —(वि०) माया रहित।

निर्झर—एक वाद्य।

निसान—(पु०) निसान कांसे, तांबे अथवा लोहे का बना हुआ वाद्य है जो क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम माना जाता है। इसका मुख बड़ा तथा पेंदा छोटा होता है। मध्य में मुख और पेंदे का आधा होता है। पेंदे में कांसा भरा होता है तथा मुख भैंस के चमड़े से मढ़ा होता है। वह चमड़े के वस्त्रों द्वारा जिसमें कड़े पड़े होते है कसा जाता है। इन कड़ों को जोर से खींच कर इसे बजाते हैं। यह चमड़े लगे हुए दो कोणों से बजाया जाता है। इसका शब्द भीरुओं को दहलाने वाला तथा वीरों को रोमांचित करने वाला होता है।

(संगीत रत्नाकार ६,११५१,११५४)

नूत—नूतन, अनोखा।

नूपुर—(पु०) पैरों की अंगुलियों का आभूषण, बिछुआ नोलासी।

प

पंक्ति—(स्त्री०) पंक्ति, कतार।

पंचम—(वि०) सुंदर। सात स्वरों में से एक स्वर जो कोकिल के अनुरूप माना गया है।

पखावज—(पु०) संगीत पारिजात के अनुसार यह वाद्य लाल चंदन, लोहे अथवा लकड़ी का बना हुआ होता है जिसकी लंबाई बारह मुट्ठी तथा मध्य की गोलाई कुछ इससे अधिक होती है। इसके मुख बारह अंगुल व्यास के मेष के चमड़े से मढ़े हुये होते हैं। मुख के बाहिरी ओर दो लोहे के कड़े लगे रहते हैं जिनमें बीस-बीस छेद होते हैं। इन दोनों ओर के मुखों को चमड़े के तसमे द्वारा इन छेदों में होकर कस दिया जाता है। रस्सियों को इच्छानुसार खींचने के लिये दाईं ओर लकड़ी की गिट्टकें लगी रहती है। सुंदर ध्वनि उत्पन्न करने के लिये दाईं ओर के मुख के मध्य में छह-छह अंगुल स्थान पर लोह चूर्ण लगा रहता है तथा बाईं ओर आटा गूंथ कर लगाया जाता है।

पट—(पु०) पाट, सिंहासन।

पटल—(पु०) परवल की लता, करौंदा का वृक्ष, ब्रज में परवल नहीं होता, अतः इसका अर्थ करौंदा ही लेना उचित है।

पटह—पु०) ढोलक।

पटुली—(स्त्री०) काठ की पटरी जो झूले की रस्सियों पर रखी जाती है।

पटोरी—(स्त्री०)रेशमी साड़ी।

पटोल—(पु०) रेशमी वस्त्र।

पताक—(स्त्री०) पताका, झंडी।

पत्र—(पु०) चिट्ठी।

पद चर—(पु०) पैदल।

पराग—(स्त्री०) वह रज या धूलि जो फूलों के बीच लंबे केशरों पर जमी रहती है। पुष्परज।

परिमल—पु०) सुगंध।

परिहस—(पु०) परिहास।

पलाना—(क्रि० अ०) पलायन करना, भागना।

पलास—(पु०) टेसू। एक प्रकार का वृक्ष जिस पर कुछ पीतता लिये हुए लाल रंग के फूल आते हैं। उसकी कली रूपमेंतोते की चोंच जैसी दिखाई देती है। इसके पत्ते तीन-तीन के थोक में निकलते हैं और इसी कारण 'ढाक के तीन पात' वाली कहावत हो गई है। बसंत ऋतु में जब यह वृक्ष पुष्पित होता है तब इसके संपूर्ण पत्ते गिर जाते हैं और वृक्ष दूर से एक दम लाल रंग का दिखाई देने लगता है। जिस स्थान पर टेसू का बन होता है वहाँ चारों ओर लाल ही लाल दिखाई पड़ने लगता है। इसके फूलों को लेकर गरम पानी में उबाल लिया जाता है तो यह केसरिया रंग का हो जाता है। यह ब्रज में होली खेलने में एक दूसरे पर डाला जाता है। कवि बसंत वर्णन करने में जिस प्रकार कोयल को नहीं भूलता उसी प्रकार इस टेसू के बिना भी उसका बसंत वर्णन अधूरा रहता है। यही कारण है कि कालिदास से लेकर अब तक के सभी कवियों ने इसका वर्णन किया है। संयोग शृंगार में यह अनुराग का प्रतीक तथा वियोग में अग्नि के समान दाहक वर्णन किया जाता है। सूरदास ने इस टेसू का वर्णन स्थान-स्थान पर किया है और उनका चारों दिशाओं में फूलने का उल्लेख किया है किंतु ब्रज में होने वाली सरसों का कहीं

भी उल्लेख नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास के काल में यहां जंगल ही जंगल थे जिनमें टेसू बहुतायत से उत्पन्न होते थे और आज कल की भाँति सरसों की खेती नहीं होती थी अन्यथा सूर की अंधी आखों से वह कभी ओझल नहीं हो सकती थी। पं० जयदेव शर्मा ने अथर्ववेद का भाष्य करते हुए (भाग १, पृ० २२३) पर्ण शब्द का अर्थ पलाश किया है। पलाश की उत्पत्ति के संबंध में ब्राह्मण ग्रंथों में लिखा है कि सोम का पत्ता टूट गया वही पर्ण होगया (तै० १, १, ३, १०) तीसरे द्योलोक में सोम था उसको गायत्री ला रही थी उसका पर्ण टूट पड़ा और वह पर्ण होगया। गायत्री सोम लेने गई। जब ला रही थी तो बिना चरण के एक लँगड़े धनुर्धर ने बाण प्रहार कर उसका पर्ण (पंख) काट डाला। गायत्री या राजा सोम का पर्ण गिर कर पलाश हो गया (शतपथ १, ७, १, १) इसी में आगे लिखा है कि गायत्री छंद श्येन होकर द्योलोक से सोम लाया। फलतः श्येन को किसी निशाने बाज ने बाण मारा तो श्येन का पंख झड़ा और सोम की डाली का पत्ता गिरा।

पल्लव—(पु०) पत्ता।

पवन—(पु०) वायु।

पहुनाई—(स्त्री०) अतिथि सत्कार, मेहमानदारी।

पागना—(क्रि० स०) तन्मय करना, डुबाना।

पाटल—(पु०) पाडर। देखो पाडल।

पाडल—(पु०) पाडर। हिंदी शब्द सागर के अनुसार पाटल और पाडल एक ही वस्तु है। वनपस्ती-चद्रोदय (पृ० ९२) में दोनों का एक पर्याय पाटला मिलता है जिससे पाटल शब्द बन जाता है किंतु इसी पुस्तक में पाडल और पाडर दो भिन्न जाति के वृक्ष माने गये हैं। पाडल एक बड़ी जाति का वृक्ष दक्षिण के पहाड़ी भागों और श्री लंका में उत्पन्न होता है। इसकी बहुत सी शाखाएँ फैलती तथा छाल मोटी पीले रंग की होती है। पत्ते १२ से १८ इंच तक लंबे दोनों ओर फैले रहते हैं। इसके पुष्प सुगंधित और शीघ्र गिरजाने वाले होते हैं। कलियाँ १/४० इंची तक लंबी होती हैं। फल का भीतरी हिस्सा दो सैंटीमीटर लंबा पीले रंग

का कुछ ललाई लिये होता है।

पाडर को संस्कृत में अलि-प्रिया, अंबबासी, बसंत दूती, कोकिला, पाटला आदि कहते हैं। यह मध्यम कद का बड़ा वृक्ष उत्तरी भारत में बहुत पैदा होता है। बंगाल में यह बहुत प्रसिद्ध है। इसकी छाल ऊबड़ खाबड़ खाकी रंग की होती है। इसके पत्ते संयुक्त और आमाने सामने होते हैं। इसकी फलियाँ हाथ भर लम्बी होती हैं। इसके लाल और सफेद के भेद से दो जातियाँ होती हैं।

सूरदास का वर्णन उत्तर भारत का है अतः पाडल का अर्थ दक्षिण भारत वाला पाडल नहीं उत्तरी भारत का पाडर ही होगा जो अपने बसंत संबंधी पर्यायवाची शब्दो से बसंत की विशेष वस्तु हो जाती है—

पात—(पु०) पत्ता।

पारधी—(पु०)बहेलिया, व्याध, शिकारी।

पिक—(स्त्री०) देखो कोकिल।

पिचकाई—(स्त्री०) पिचकारी।

पिछोड़े—(क्रि० वि०) पीछे की ओर।

पिछोरी—(स्त्री०) छोटा दुपट्टा।

पुंज—(वि०) समूह।

पुहुप—(पु०) पुष्प, फूल।

पेलना—(क्रि० स०) प्रेरणा करना, चलाना, ढकेलना।

पैंडा— पु०) रास्ता।

पौरि—(स्त्री०) ड्योढ़ी।

प्रबाल—(पु०) मूंगा।

प्रमाद— पु०) पागलपन।

प्रानि—(पु०) प्राणी।

फ

फगुआ—(पु०) वह आभूषण, वस्त्र, शृंगार सामग्री आदि उपहार जो होली खेलने वाले अथवा उनके अभिवाभकों की ओर से होली खेलने वाली स्त्रियों को दिये जाते हैं फगुआ कहलाते हैं।

ब्रज में नदगाँव बरसाने की ओर आज भी ब्रज सुदरियाँ फागुन के महीने में परदेशियों को घेर लेती तथा फगुआ माँगती है। यात्री लोग प्रायः उन्हें इच्छित वस्तु प्रदान कर देते हैं जिसमें उनमें ब्रज गोपिका होने की भावना निहित रहती हैं।

फेंट—(पु०) कमरबंद।

ब

बंक—(वि०) तिरछी, वक्र।

बंदन—(पु०) सिंदूर।

बँसिया—(स्त्री०) बाँसुरी।

बंसीवट—(पु०) वह स्थान जहाँ वट वृक्ष पर बैठ कर श्री कृष्ण ने बाँसुरी बजाई थी। वृंदावन में बंशीवट नामक एक स्थान जहाँ आज-कल भी नित्य प्रति रासलीला होती है।

बकुल—(पु०) मौलसिरी।

बग—(पु०) बगुला।

बदना—(क्रि० स०) कहना।

बनराई—(स्त्री०) चमेली।

बरन-बरन—अनेक रंगों की।

बरनी—(वि०) वर्ण वाली।

बरबस—(क्रि० वि०) बलपूर्वक, हठात्, जबरदस्ती।

बर-बरै—(वि०) श्रेष्ठ।

बल—(पु०) बलराम, श्री कृष्ण के बड़े भाई।

बलैया—(स्त्री०) बलाय।

बल्ली—(स्त्री०) बेल, लता।

बसन—(पु०) वस्त्र।

बसीठि—(पु०) बसीठ, संदेशा ले जाने वाली, दूती।

बस्य—(वि०) बस।

बाँसुरी—(स्त्री०) पके हुए बाँस की पोर, जो दस अंगुल से एक हाथ तक लंबी होती है, से निर्मित मुख की फूंक द्वारा बजाये जाने वाला वाद्य यंत्र है। इसमें छह से आठ तक छेद होते हैं। दूसरे सिरे पर एक छिद्र होता है जिसमें मुख की वायु फूँक कर दूसरी ओर के छिद्रों को विशेष प्रकार से अंगुली से दाव कर विविध प्रकार के स्वर उत्पन्न किये जाते हैं।

बाखरि—(पु०) मकान।

बागा—(पु०) जामा, वस्त्र।

बात—(स्त्री०) वायु।

बादर—(पु०) बादल।

बानक—(पु०) बनाव, बनावट।

बानि—(स्त्री०) बनाना।

बाने—(पु०) झण्डा।

बाम—(स्त्री०) स्त्री।

बारना—(पु०) न्योछावर।

बीन-ना—(स्त्री०) आइने अकबरी के अनुसार यह वाद्य यंत्र वत् (देखो जंत्र) होता है किंतु इसमें तीन डोरी होती हैं।

बृध—(पु०) बुढ्ढा।

बृषभानु-कुंवरि—(स्त्री०) राधा।

बेनु--(स्त्री०) बेणु, वंशी मुरली। संगीत-रत्नाकर (६,७८४) में चार छिद्रों वाली बंशी को मुरली कहा है।

बेलि—(स्त्री०) लता।

बैरख—(पु०) झंडा।

बारी—(स्त्री०) बलिहारी।

बारुनी—(स्त्री०) शराब।

बाल— स्त्री०) बाला,तरुणी।

बासर—(पु०) दिन।

बिंब—(पु०) प्रतिबिंब, छाया।

बिचरना—(क्रि० अ०) चलना।

बिथुरि—(क्रि०वि०) बिखरी हुई।

बिदुरना—(क्रि० स०) विदीर्ण होना।

बिलास--(पु०) क्रीणा।

बिलोल—(वि०) चंचल।

बिस्तर—(पु०) इधर-उधर बढ़ना।

बीच--(पु०) मध्य, बीच-बिचख।

बीबिन—(स्त्री०) गली।

बीरा-री—(पु०) बीड़ा, पान।

बृंद—(वि०) समूह।

भ

भँवर-रें-(पु०) भौंरा।

भरु—(क्रि० वि०) भरी हुई, संपूर्ण।

भरोरियाँ—(क्रि० अ०) भरी हुई हैं।

भाई—(क्रि० वि०) इच्छित।

भाजन—(पु०) पात्र।

भाना--(पु०) तोड़ना।

भावरो—(पु०) भाव।

भुजंग—(पू०) सर्प।

भुव—(स्त्री०) पृथ्वी।

भृंगी—(स्त्री०) भौंरी।

भेरि-री—(स्त्री०) मृदंग जाति की तीन हाथ लंबे, एक हाथ मुख का व्यास वाले वाद्य का नाम भेरी है। यह मुख चमड़े से मढ़े होकर डोरियों से कसे रहते हैं जिसमें काँसे के कड़े पड़े रहते हैं। संगीत रत्नाकर (६,११५० ११५०) के अनुसार तीन बलिश्त लंबी होती है इसके दाहिने मुख की लकड़ी तथा बाँये को हाथ से बजाया जाता है।

भेरी-भँवर— सूरदास ने

भेरि भँबर का उल्लेख अपने पदों में किया है जिसमें उसकी गुंजार का वर्णन है। यह ब्रज का वह सुषिर वाद्य है जो ध्वनि विस्तारक यंत्र की भाँति होता है और इसमें मुख से फूँक देने से भौंरे के शब्द की भाँति गुंजार होता है।

भुरकना—(क्रि० सं०) छिड़कना।

भोंरी—(वि०) सीधी।

भोल—(क्रि० स०) भूल गया।

भौना—(पु०) भवन, घर।

भ्रुव—(पु०) भौंह।

म

मंजरी—(स्त्री०) फूलों का वह गुच्छा जो एक ही सींक पर इकट्ठे एक साथ उत्पन्न होते हैं।

मंजीरा—(पु०) दो अंगुल से चार अंगुल तक व्यास के तथा बीच में एक अंगुल गहरे कासे के बने हुए दो पल्ले जो एक डोरी से बँधे रहते हैं।

मंजुल—(वि०) सुंदर।

मख—(पु०) यज्ञ।

मघवा—(पु०) इंद्र।

मतौ—(पु०) सलाह, राय।

मत्त—(वि०) मस्त। मत वाला।

मद—(पु०) प्रमाद।

मदन—(पु०) कामदेव।

मधु—(पु०) चैत्र, शहद।

मधुकर—(पु०) भौंरा।

मधुप—(पु०) भौंरा।

मनोरा झूमक—(पु०) होली मे गाये जाने वाला एक गीत।

मन्मथ—(पु०) कामदेव।

मयारि—(स्त्री०) मयारी, वह डंडा या धरन जिस पर हिंडोले की रस्सी लटकती है।

मरजाद—(स्त्री०) मर्यादा।

मराल—(पु०) हंस।

मरुवा—(पु०) बन तुलसी अथवा बबंरी जाति का एक पौदा।

मरोरना—(क्रि० सं०) बल डालना।

मल गोलना—(क्रि० अ०) आनंद करना।

मलय—(पु०) पश्चिमी घाट का वह भाग जो मैसूर राज्य के दक्षिण और ट्रावन कोर के पूर्व में है। सफेद चंदन।

मलयानिल—(स्त्री०) मलय पर्वत की ओर से आने वाली वायु जिसे दक्षिण पवन भी कहते हैं। यह वसंत ऋतु में चलती है। सुगंधित वायु।

मसि—(स्त्री० स्याही।

महर—(पु०) नंद। ब्रज में महर शब्द का प्रयोग बड़े बड़े जिमीदारों को आदर सूचक संबोधन के रूप में भी किया जाता है।

महुअरि—(पु०) सँपेरो के बजाने की तूमड़ी।

माँट—(पु०) बड़ा मटका जिसे ब्रज में गोल भी कहते है। यह साधारण मिट्टी के घड़े से दुगुना, तिगुना आकार का होता है।

माधवी—(स्त्री०) एक प्रसिद्ध लता जिसमें सुगंधित पुष्प लगते हैं।

मालती—(स्त्री०) एक प्रसिद्ध लता जो वृक्षों पर घटा टोप फैलती है। इसकी डाली रूएदार, पत्ते जीवंती के समान लंबे गोल लाल सिरे वाले तथा पुष्प श्वेत रंग के होते हैं, इसके पुष्पों में खूब खुशबू आती है।

मुँहचंग—(पु०) भारतीय वाद्यों में मुँह-चंग एक अति विचित्र तथा लघु स्वरूप जो कुर्ते की जेब में आसानी से रखा जा सकता है) लौह निर्मित और ताल को अति सुंदर रीति से प्रदर्शित करने वाला सुषिर वाद्य है। जिस प्रकार मोहन की मुरली है उसी प्रकार उनके प्रिय सखा मनसुखा के मुँह लगा यह वाद्य विशेष मुँह चंग है।

मुदित—(वि०) प्रसन्न।

मुरज—(पु०) यह मृदंग जाति का वाद्य है। मृदंग और मुरज में यह अंतर है कि मुरज का दाहिना मुख सत्रह अंगुल और बाँया मुख अठारह अंगुल तथा लंबाई एक हाथ होती है। गले में लटका कर बजाया जाता है। किसी किसी के मत से इसके बाँये ओर लेप लगा रहता है।

मुरलि-ली—(स्त्री०) एक प्रकार की बाँसुरी जो दो हाथ से अधिक लंबी तथा चार स्वर-छिद्रों से युक्त होती है।

(संगीत-रत्नाकर ६,७८४)

मृगमद—(स्त्री०) कस्तूरी।

मृदंग—(स्त्री०) देखो पखावज।

मेदनी—(स्त्री०) पृथ्वी।

मौंगरा—(पु०) एक बढ़िया जाति का बेला।

मौरना—(क्रि० स०) वृक्षों पर मंजरी लगना। बौर लगना।

र

रतनारा—(वि०) कुछ लाली लिये हुए।

रबाब—(पु०) सारंगी की भाँति का एक बाजा जिसका पेट सारंगी से अधिक लंबा तथा ड्योढ़े के लगभग चहरा होता है। पेट के ऊपर का दंड सारंगी से पतला परंतु उससे कुछ लंबा त्रिभुजाकार होता है जो अंत में अंग्रेजी अक्षर 'वी' की भाँति मुड़ा रहता है। इसमें दो घुड़च एक पेट के मध्य में और दूसरी दंड के आरंभ में। इसमें ताँत के सात तार लगे रहते हैं।

रवि-तनया—(स्त्री०) यमुना।

रातुल, राते—(वि०) लाल।

राय गिरगिरी—(स्त्री०) टेबिल-टेनिस की भाँति के दो छोटे लकड़ी के टुकड़े जिन्हे बाये हाथ की तर्जनी के ऊपर नीचे रख कर दाहिने हाथ की हथेली से बजाया जाया है।

रासी—(वि०) समूह।

रिस—(स्त्री०) क्रोध।

रुंज—(पु०) काष्ट अथवा धातु का बना हुआ यह वाद्य सात मुट्ठी लंबा ढोलकनुमा होता है। दोनों ओर से मुखों का चमड़े डोरी से कसा हुआ होता है जिसमें छल्ले या कड़े पड़े रहते हैं। इसके दाहिने मुख को एक टेढ़े बाँस से घिसकर तथा बाँये को एक कड़ी द्वारा पीट कर बजाया जाता है।

रोर—(स्त्री०) हल्ला, कोलाहल।

रोरी—(स्त्री०) रोली।

ल

लौंनी—(वि०) सुंदर।

स

संकुलित—(वि०) भरा हुआ, व्याप्त।

सनाक—(वि०) सनकी, जो किसी धुन मे विशेष रूप से रहे।

सरासन—(पु०) धनुष।

सहचरि-री—(स्त्री०) सखी।

ह

हरक—(पु०) रोकना, मना करना।

हरुआई—(स्त्री०) फुर्ती।

हलधर—(पु०) बलराम।

-:※:-